समयके पाँव

माखनलाल चतुर्वेदी

•



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थाङ्क–१
माला सम्पादक-नियामक
मीचन्द्र जैन

SAMAYA KE PANVA
MAKHANLAL CHATURVEDI
Publication
Bharatiya Jnanpeeth Kashi
First Edition 1962
Price Rs. 3/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी
प्रथम संस्करण १९६२
मूल्य तीन रुपये

दो शब्द

व्यक्तियोंसे बँधा होनेके कारण यह संग्रह अधिक प्रयत्नशील है। प्रतीत होता है इन व्यक्तियोंके जीवनने मेरे जीवनको रहन रख लिया था।

लोगोंको बहुत पहले लिख गया है कि महापुरुषोंके जीवन हमें यह स्मरण दिलाते हैं कि हम किस प्रकार अपने जीवनको ऊँचा उठा सकते हैं। इस पुस्तकके बालूपरसे व्यक्तियोंने जो चरण-चिह्न छोड़े हैं वे कभी मिट नहीं सकते। इसलिए समयके पाँव पर मस्तक रखनेके सिवाय और कोई चारा नहीं दिखाई देता।

बिस्तरेपर पड़े-पड़े मैं इतना ही लिख सकता हूँ। इस समय तो मैं समस्त देशका ध्यान भारतकी उत्तरी सीमापर नगाधिराज हिमालयपर खींचना चाहता हूँ। लोकमान्य तिलक, राष्ट्रपिता बापू, सुभाषचन्द्र बोस और झाँसीकी रानी की गायिका सुभद्रा कुमारी चौहानका इस पुस्तकके माध्यमसे जो पुण्य-स्मरण किया गया है, वह तभी सफल हो सकता है।

दीपावली
शनिवार दिनांक २०।१०।६२

—माखनलाल चतुर्वेदी

अनुक्रम

o

तुम्हारी स्मृति

दुनियाकी मर्दुमशुमारी ख़त्म हो रही है। यथार्थमें दुनियामें दो-चार ही गिने चुने जीव रहते हैं। उन्हींकी गिनती दुनियाकी गिनती है और उन्हींका मत दुनियाका मत। कोई चालीस बरस पहलेसे देखते आये हैं कि एक उस गरीबने जिसे अपनी झोंपड़ी नसीब नहीं और अमीरने भी जिसने ऋद्धि-सिद्धियोंको हाथ बाँधे खड़ा पाया उस बूढ़ेने जिसके लिए हाथकी लकड़ी ही अवलम्ब थी और उस पढ़े-लिखेने भी जिसको अपनी बुद्धि बेचकर रोटियाँ नसीब हो जाती थीं उस किसानने जिसपर लगानके नामपर अत्याचार बढ़ते गये और उस व्यापारीने जिसने केवल कच्चे मालकी दलालीपर अपनेको नीलाम पाया बार-बार अपने हृदयको टटोला बड़े जुलूसोंमें और अंधेरे मकानोंमें कड़ी दुपहरोंमें और ठंडी रातोंमें तेज लुओंमें और झड़ारी बरसातमें अपने हृदयको परखा और उसपर प्रकृतिके द्वारा कुछ खुदा पाया। एक दिन पाया कि करोड़ोंने अपने दिलों पर एक नाम लिखा पाया। नाम ऐसा था जो मिटाये मिटता नहीं भुलाये भूलता नहीं छुड़ाये छूटता नहीं और वह था— 'तिलक'।

बस एक ही बात लेकर यह मूरत अखाड़ेमें उतरी। भारतमें आग थी। एक तरफ अज्ञानी जनता और दूसरी तरफ जानकार सरकार। धार्मिक? हाँ वह धार्मिक था और समाजसेवक भी। वह मौलिकतामें कम न था और विद्वत्ता ऐसी अनोखी थी जिसपर मनुष्यता अभिमान कर सकती है। जहाँ ज्योतिषमें उसकी कलम कमाल करती वहाँ साहित्यका वह आचार्य माना जाता। मातृभूमिके उपासकोंमें उसका दरजा उसीको प्राप्त है और महाराष्ट्र प्रान्तकी सेवा करनेमें जब 'वीर बाजी' कहलाने वाले लोगोंकी संख्या कम नहीं। प्राचीनताका ऐसा उपासक कि वह आर्क-

टिकमें वेदोंकी उत्पत्ति बतलाता।

और उन लोगोंका जो हिन्दू धर्मके उपासक होते साथ देता। विद्वानलोग सिद्ध करते हैं कि उसने शिकागोको छोड़कर प्रायश्चित्त किया पर यह उसका बचपन था सचाई थी। पर उसके लिए एक बात कहनी चाहिए। वह राष्ट्रीय भावोंका मतवाला था और उन्हींपर मरना उसका काम था। पुरुषकी ताकत एक ही काम ढूंढती है और उसे पूरा करती है। परम पुरुषकी ताकत जीवनका मिशन पूरा करती है और उसके लिए पृथ्वी और आकाश उसको साधन बना डालती हैं। अन्तमें देशाटनपर उसे कृष्ण और उनकी गीताकी जरूरत हुई और जीवित वेदान्तको मथकर उसने राष्ट्रीयताका मक्खन निकाला। उसने गरीबोंका मिजाज अपनेमें इज्जत समझी और उनके कष्टोंको दूर करनेमें उसकी आग इस तरह लड़ने लगी जिस तरह गरमीके बाद बरसात होने लगती है। वह उनकी आवश्यकताएं ढूंढने लगा और धीरे-धीरे उनके हृदयोंमें पहुँच गया। अपने संचित पुरुषत्वको उसने समाजकी अवस्थापर रखा और पैदा होनेवाली बिजलीका उसने झनझनक पाठ पढ़ाना शुरू किया। वह गरम कहा जाता है पर वह छल्ला या धोखा-धड़ी पसन्द नहीं। उसकी बुद्धिने इसे स्वीकार नहीं किया कि कोई एक देश दूसरे देशको गुलाम बनाये रहे।

उसने परिस्थितिको बदलना चाहा। रास्ते दो थे। एक सचाईका जिसमें अज्ञानी जनता साथ न देती अधिकारियोंकी शक्ति दुश्मनी भँजाती और सब गुणों और शैतानोंके बदलेमें मिलती भूख झिड़कियाँ कष्ट और कठोर दण्ड। परन्तु दृढ़ जीवोंसे पक्के ईमानदार रहता और कहता उद्धारके आचारकी सृष्टिके अवतारकी यही परिभाषा है। दूसरा रास्ता भी था। धीरे-धीरे काम चलाया जाता। दिखाया जाता कि अभी कुछ नहीं चाहते पर मौका ढूंढा जाता है कि शत्रु हटा दिया जाये। आरामसे सफल न बढ़ने पाता और मनसूबे ही में मौत हो जाती। उसे पहला मार्ग भाया उसका सबसे बड़ा गुण विरोध-असहयोग रहा।

उसने अपनी पूरी ताकतें सामने रखीं और कभी टुकड़ोंपर मन नहीं ललचाया। वह कांग्रेसमें पहुँचा और राष्ट्रीयताके जितने साधन प्राप्त हो सकते थे उसने उनके घरोंमें बैठकर प्राप्त किये। साहित्यको टटोला और जीवन-ज्योति जगमगानेवाली शक्ति उसमें भर दी। उसे उन सब गुणोंकी अपेक्षा थी जिनसे राष्ट्रीयताको जीवन मिले, राष्ट्रीयता उसका धर्म था और देशकी स्वाधीनता उसका ध्येय। वह अन्यायका आजीवन विरोधी रहा और उसने अधिकार न मिलने तक अधिकारियोंसे भिड़ना धर्म समझा। उसकी बुद्धि नीतिके उलझे हुए वायुमण्डलमें प्रवेश कर जाती और एक ऐसा तत्त्व उसे ढूंढ़ देती जो उसके धर्मको निबाहता और ध्येय की ओर उसका कदम बढ़ाता। वह जनताको मन्त्रमुग्ध किये रहता और बिना हथियारोंका वह कम्पनी सिंहासन हिलाया करता।

उसके काम करनेके ढंग धार्मिक सजीवता व्यावहारिक सरलता और ध्येयकी दृढ़ताने उसे उसके देशके धर्मों और दैव-सत्तामें विश्वासकी नींव बना दिया। परिणाम यह हुआ कि ईसा और मुहम्मदके अनुयायियोंके समान बिना जमाये ही उसका एक दल बन गया। पर उसने अपना दलके दलको जनतापर इसलिए चढ़ाना आरम्भ किया कि उनके कष्टोंसे राष्ट्रीयताके पनपनेमें सहारा मिले। चरित्रकी उज्ज्वलतामें उसका लोहा शत्रुओंने भी माना। वह मनुष्योंको उत्पन्न करता और उन्हें खाली नहीं जाने देता। संगठन उसका स्वभाव था वह उचित कर्तव्योंके लिए उचित व्यक्तियोंकी योजना करता और उन्हें इतना अधिक अपना बना लेता कि संसारकी कोई मानवीय ताकत उन्हें जीवनमें बदलता न पाती। 'जगन्मिथ्या' के वह मानव उसके मार्गमें काँटे बोये और उसने अर्जुनके सारथी-को उसके उपदेशों समेत कलमके कारागारमें बन्द कर दिया। उसने उसे साफ किया और भारतीय धर्ममें आनेवाली मुर्दनीकी समयपर दुरुस्ती की। वह 'एक्स्ट्रीमिस्ट' कहा जाता है किन्तु ईसा मुहम्मद अथवा गान्धीके समान अपनेको वस्तुकी सात्त्विकताकी एक्स्ट्रीम दुनियामें दुनियाकी बनाकर

रहा और किसी एक युग और व्यवहारमें चरम सीमा न छिटककर प्रत्येक युग और व्यवहारको पैदा होनेवाली परिस्थितियोंके साथ-साथ समान रूपसे विकसित करता रहा।

उसे भले ही कहा जाता है। वह है भी। पर वह राजर्षि है महर्षि नहीं। उसने गुणोंका दुरुपयोग नहीं किया, प्रकृतिके प्रदान किये हुए गुणका उसने सदुपयोग ही किया, वह चाहे राजाओंको शोभनेवाला रजोगुण हो चाहे ज्ञानियोंको मोहनेवाला सतोगुण। स्वामी रामके कथनानुसार उसने तमोगुणकी भी अवहेलना नहीं की। एक अपनी दुनियाके सम्यक्-शील निर्माताकी हैसियतसे उसने अपने अनुयायियों या चीजोंके आगे कोई ऐसी बात नहीं रखी जिसे न असम्भव कहकर छोड़ सकें। उसने पहले तरह तरहकी क्रियाएँ उत्पन्न करके भारतवर्षमें उलट-पलटकी परिस्थितियोंको निर्भीकता और सावधानतासे उत्पन्न किया। कभी उसने स्वदेशीकी आवाज उठाकर देशको 'क्रियमाण' (उत्पत्ति) के लिए उभाड़ा और कभी बायकॉटका हामी होकर क्रियमाणकी शक्लमें असहयोग ला दिया। इस तरह जहाँ शरीरोंको भारतीय करनेका उसने बीड़ा उठाया था मनोंको भारतीय करनेके लिए उसने प्रारम्भ किया सार्वराष्ट्रीय शिक्षाका बीड़ा उठाया। उसने दिखा दिया था कि पहले शरीरपर स्वराज्य फिर मनपर स्वराज्य फिर कार्यपर स्वराज्य फिर साथियों-पर स्वराज्य और फिर समूचे देशपर स्वराज्य। गुलामी उसे पसन्द न थी फिर वह किसीकी भी हो।

वह परम-मुक्ति युग स्वाधीनताका उपासक था। इस क्रममें उसका मकसद हुए और उसे सब जीवों और पदार्थोंका कल्याण करता। परिस्थितियाँ और व्यक्ति उत्पन्न करनेके बाद वह उनका संगठन करता। फिर धीरे-धीरे वह उनके संगठनको और उनकी परिस्थितियोंको बढ़ाता और ऊँची बनाता और अन्तमें सारी परिस्थितियों व्यक्तियों और वस्तुओं-का अवतारी युगपर बनकर उन्हें अपने ध्येयकी निकटतम बनानेमें तथा

देता। जेल जाना जम्बू टो स्टेशनके समान उसके लिए साधारण बात थी। अत्याचारी शक्ति यह सुननेको तरसती रहती कि वह कमसे-कम एक बार दब जाये पर दब जाना उसको पढ़ी हुई किताबोंमें कदाचित् उसे लिखा नहीं मिला। राज तलवारोंके बलपर लिये जाते हैं पर उसने इसे झूठा सिद्ध किया। उसने सिद्ध किया कि कोई परायी ताकत जनताकी इच्छाके बिना उसपर कब्जा नहीं रख सकती। विरोधिनी ताकतकी यह बड़ी भारी हार थी कि वह उस बावन वर्षके बूढ़ेको काले पानीकी सजा दे। इससे उसकी शक्ति और सजीवताकी परीक्षा हो सकती है।

महाराष्ट्रका वह प्राण था। परन्तु उसने महाराष्ट्रको सीमारहित कर दिया था। उसकी आज्ञा पालनेमें कश्मीरसे कन्याकुमारी तक सभी महाराष्ट्र हो गया था। एक अदृश्य शक्तिके समान उसकी सत्ता भारतीयोंके हृदयोंमें विहार करती और जमीन तथा मार्गोंपर विदेशी ताकतका साम्राज्य रहते हुए भी वह करोड़ों भारतीयोंका हृदयसम्राट् था। बड़ी-बड़ी शक्तियाँ उसके सामने सिर झुका देतीं और कहतीं तिलकने मेरे व्यक्तित्वका अपने ध्येयकी सड़ककी गिट्टी बना डाला। उसकी सत्ताके भयसे इंग्लैण्डके न्याय देवताको इसीलिए अन्याय करना पड़ा कि तिलकके प्रति न्याय करनेसे ब्रिटिश शासनकी खैर नहीं। वह गत चालीस वर्षसे काममें लगा था और देशके गत चालीस वर्षोंका इतिहास उसका निजका इतिहास है। भारतका कठोर दुश्मन भी बार-बार तिलकका नाम लिये बिना गत चालीस वर्षों-का इतिहास नहीं लिख सकता चाहे वह अपनी बुद्धिकी अनन्त शक्तियोंका कितना ही उपयोग क्यों न करे।

उसने देशको सजीवता दी और बार-बार मिटकर यह दिखाया कि पूर्ण स्वाधीनता ही भारतका जीवन है। वह इससे एक तिल भी कम लेनेके लिए राजी न था। वह भारतीय पार्लमेण्टका सपना देखता और अपने देशमें इंग्लैण्डकी जैसी नीतिमत्ता अमेरिका-सा अध्यवसाय और जर्मनी-सा संगठन लानेको प्रयत्नशील रहा। प्रतियोगी सहकारिताके लिए

था उस दिन राजी हुआ जिस दिन उसके देशको कुछ अधिकारकी कद्र मिली। किन्तु यह अधिकारोंकी कद्र उसने यह घोषणा करके की थी कि मैं कौंसिलमें नहीं जाऊँगा। गान्धीकी महान् आत्माने उसकी लोकमान्यता-को सिरपर लिया शासकवर्गकी विजयिनी शक्तिने उसे मस्तक झुकाया और मालवीयकी मंजुल मूर्ति उसके साथ रहकर धन्य हुई। उसने दिखाया कि एक दिनका स्कूलमास्टर, दूसरे दिनका सम्पादक और तीसरे दिनका कैदी किसी देशका लोकमान्य भगवान् हो सकता है—उसी तरह जिस तरह एक दिनका कैदी दूसरे दिनका ग्वालोंका गोपाल और तीसरे दिनका सारथी भगवान् कृष्ण। जिस तरह उसकी भक्ति शास्त्र रच सकी उसी तरह यदि उसके देशके शस्त्र न छिने होते तो उसमें अपनी रण-कुशलता से भूमण्डलमें अपने आपको महान् समरनायक और प्रचण्ड विजेता सिद्ध करनेमें कसर न की होती।

उसका जीव या उसके मिशनकी पूर्णताका सूत्र चाहे जैसा हो चाहे जहाँ रहता हो और चाहे जिस तरह रहता हो, तो भी उसपर प्रहार करनेवालेका पहला वार अनुयायीपर पड़नेके पहले ही वह समझता था। उसके जैसा आत्मा भी इतिहास नहीं है और नहीं है उसकी छत्रछायामें निवास करनेवाले पुण्यात्माओंका उदाहरण। उसके मरने पर उसकी घोषणा के अनुसार धर्मों और क्रियाओंके युवा तपस्वीने जबलपुरमें भाषण देते हुए कहा था मेरे दिन थोड़े हैं तुम मेरे पीछे जो स्वराज्य प्राप्त करो। उस समय यह नहीं ज्ञात था कि उसके देशपर उसकी जिम्मेदारी इतने शीघ्र आ पड़ेगी और उसकी बनायी नयी विशेषताओंके अनुसार—राष्ट्र-सिपाहके सिपाही उसकी तैयारियोंके चुनाव पहुँचे। पर हो वही गया। और आँसुओंको पोंछते हुए देशको आचार्य धीमे ही सैनिकोंकी सेनामें पूरी तेजस्विताके खड़ा करती नजर आयी।

लोकमान्य तिलकपर कुछ लिखना वाङ्मयी गंगाके तटपर खड़े होकर बूँदोंका रजिस्टर बनाने-जैसा कठिन है। जिस समय उनका स्वर्गवास हुआ था उस समय उनके विरोधी प्रयागके अँगरेजी दैनिक पत्र 'लीडर' में उसके स्वनामधन्य सम्पादक स्वर्गीय श्री सी वाई चिन्तामणि ने लिखा था कि लोकमान्य तिलक एक व्यक्ति नहीं एक संस्था थे। महात्मा गान्धीके पूर्व भारतवर्षका सारा तेज और ओज लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकमें प्रतिबिम्बित प्रतिष्ठित और प्रतिफलित हुआ था। उनका जन्म महाराष्ट्रके रत्नागिरि जिलेके दापोली तहसीलमें चिखलगाँव नामक स्थानमें २३ जुलाई १८५६ को हुआ था। उनका पालनेमें सुलाते समयका नाम केशव था। किन्तु बच्चेको महाराष्ट्र परिवारमें बाल [बालक] कहकर पुकारनेकी प्रथा है। इसीलिए कदाचित् बड़े होनेपर लोकमान्य बाल कहलाये और महाराष्ट्रीय पद्धतिके अनुसार ही अपना तथा पिताका संयुक्त संक्षिप्त नाम हुआ बाल गंगाधर। तिलक उनका उपनाम था। लोकमान्यसे बड़े होनेपर किसी साथीने पूछा तुम अपना केशव नाम क्यों नहीं लिखते? तिलकने उत्तर दिया कि मेरी माँ मुझे 'बाल' कहकर ही पुकारती थी। इसलिए मुझे बाल कहलाना बहुत प्रिय है। पेशवाओंके जमानेमें दापोली तहसील स्वर्णदुर्गके नामसे पुकारी जाती थी। यह इलाका कोंकणमें है। लोकमान्य कोंकणस्थ चित्पावन ब्राह्मण परिवारमें पैदा हुए थे। उनके शिष्य स्वर्गीय श्री न चि केलकरके शब्दोंमें चित्पावनोंपर फिनिक्स पक्षीकी उपमा बराबर लागू होती है। ग्रीक साहित्यमें यह माना गया है कि यह पक्षी चितासे उत्पन्न होता है, अकेला रहता है, भीड़-भाड़ इसे पसन्द नहीं होती उड़ान बहुत

बड़ी होती है। यह भी कहा जाता है कि इस पक्षीका 'इच्छामरण' होता है। अपनी एक स्थितिसे ऊब जाती कि वह अपने ही पंख जला डालता है और अपनी चितासे वह तेजस्वी होकर फिर आकाशमें उड़ानें भरने लगता है।

उपमाओंके सम्राट् और उक्तियोंके कोमल पारखी केशवजीका यह फ़िनिक्स पक्षीका उदाहरण कोई स्वीकृत करे या न करे किन्तु लोकमान्यके जीवनसे तथा उनकी परिस्थितियोंकी रगड़से उत्पन्न होनेवाली भारतीय राष्ट्रीयताकी चिनगारियोंका नाम ही लोकमान्य तिलक है।

आन्दोलन-प्रियता मानो उनके स्वभावमें भरी हुई थी। वे महाराज शिवाजीके गुरु स्वामी रामदासके इस कथनके साक्षात् प्रतीक थे कि—

सामर्थ्य आहे चळवळीचे,
जो जो करील त्याचे
परन्तु तेथे भगवंताचे,
अधिष्ठान पाहिजे।

अर्थात् आन्दोलनमें सामर्थ्य है उसे जो कर ले जावे वह सामर्थ्यशील है। आन्दोलन करते समय मनमें भगवान्‌का अधिष्ठान चाहिए, यदि इस कथनके आलोकमें देखें तो लोकमान्य तिलकके जीवनकी घटनाओंका मूल-सूत्र मिल जाता है।

लोग कदाचित् यह सोचते हैं कि स्वर्गीय लोकमान्य केवल राजनीतिक हलचलके जनक थे। हाँ सर वैलेण्टाइन शिरोल जैसे कट्टर दृष्टिके अंग्रेज़ने तो लोकमान्यको 'फ़ादर ऑफ इण्डियन अनरेस्ट' अर्थात् भारतीय अशान्तिका जनक ही लिखा था। किन्तु जिस तरह गुलाबका पौधा कलियों और फूलोंमें-से नहीं किन्तु काँटोंमें-से ही उगता है काँटोंका ही शरीर धारण करता है प्रतिकूल ऋतुओंमें भी हरियाता है और मस्तकपर कलियोंके मुकुट रखकर भी शरीरपर कंटकाकीर्ण गुच्छोंको भोगता है उसी तरह प्रत्येक महापुरुष और लोकमान्य भी संकटोंसे निखरकर ही

अपने युगका निर्माण कर सके। लोकमान्य तिलक केवल क्रान्तिकारी ही नहीं थे जिन्होंने संघर्ष उत्पन्न किये हों और फिर चुपचाप अनुकूल परिस्थितियोंकी प्रतीक्षामें छिप गये हों। वे क्रान्तिकारी लेखक थे क्रान्तिकारी वक्ता थे और क्रान्तिद्रष्टा थे। लेखनीके चमत्कार और वाणीके वैभवको व अग्निबाणकी तरह छेदे और वरदानकी तरह एक युग निर्माण कर रख देते थे। यदि भारतीय स्वतन्त्रताकी आवाज उन्होंने उठायी तो अपना नगर पूनामें शिक्षण-संस्थाओंका निर्माण भी उन्होंने किया। एक बार उनसे किसी मित्रने पूछा कि भारतमें स्वराज्य मिल जाये तो आप अपने लिए कौन-सा विभाग चुनेंगे? उस समय सीधे मानो लोकमान्यके रूप धरातलपर भारतीय संस्कृतिका अमृत भाण्ड लेकर खड़ा हो गया। बोले 'मैं तो स्वराज्य सरकारके किसी कॉलेजमें गणितका अध्यापक हो जाऊँगा।' क्या महत्त्वाकांक्षाके ज्वर-ज्वरसे पीड़ित आजके अधिकांश राजनीतिज्ञ इस सीखको कहीं देखा जा सकता है?

तिलक बचपनसे ही मेधावी थे। उनके पिता गंगाधरराव स्कूलोंके इन्स्पेक्टर थे। उनको अपने पुत्रके मेधावी होनेकी सूचना उसकी एक छोटी-सी शरारतसे मिली थी। एक दिन बालक अकस्मात् स्कूलमें पढ़ने नहीं गया। कहते हैं कि उस दिन उनके पिताजी दौरेपर गये थे। वे गरमीके दिन थे। ज्यों ही वे दौरेसे लौटे त्यों ही पुत्रके स्कूल न जानेकी खबर उन्हें दी गयी। जिस तरह वणिक अपने धन और राजनीतिज्ञ अपनी महत्त्वाकांक्षासे पराजित होता है उसी तरह विद्वान्का क्रोध है। यदि सन्तवर विनोबाके शब्दोंको उधार लें तो 'विद्वत्ताका दीपक बुझाया कि क्रोधका काजल आया' सो गंगाधररावजीने क्रोधित होकर अपने पुत्र-श्रीको सामने उपस्थित करनेकी आज्ञा दी। नन्हें-से तिलक आये किन्तु उस भरी गरमीमें पूनाके कठोर जाड़ोंमें पहननेका रुई-भरा हुआ मोटा अंगरखा पहनकर। पुत्रको ईमानकी तरह प्यार करनेवाले पिता बालक बालपनकी शरारतसे आप-आप हो गये। उन्होंने कदाचित् समझ लिया कि यह प्रतिभा ताड़नाकी

वस्तु नहीं है ।

अपने राजनीतिक विचारोंके कारण विदेशी सरकारके द्वारा लोकमान्य तिलक जीवन भर कष्ट सहते और बार-बार जेलखाने जानेके लिए बाध्य रहे । जो जमाना लोकमान्यको काम करनेके लिए मिला वह ऐसा था कि उस समयके सरकार-प्रेमी आन्दोलनकारी 'अशान्तिके नेता' कहकर उनका मजाक उड़ाते परिचित राजनीतिक संकटसे भयभीत होकर उनके पास न जाते उनके स्वयंके द्वारा निर्मित डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी-जैसी संस्थाओंमें ब्रिटिश सरकार-द्वारा षड्यन्त्र रचे जाते और लाचार होकर लोकमान्यको इस्तीफा देना पड़ता । जब कष्टोंका सह्याद्रि पर्वत वे अपने सिरपर उठा लेते तब लोग क्योंकर उनके साथ होते ! हाँ लोग मन-ही-मन उनकी पूजा करते उन्हें अवतार समझते किन्तु उनके जेल जानेपर प्रायः कोई न जाता । जब उनको सन् १९०८ में देश-निकालेकी सजा हुई तब हममें-से कुछ लोगोंने राखियाँ बाँधीं कुछने पढ़कर खाना छोड़ दिया कुछ सभा-सभाओंमें तल्लीन हो गये किन्तु कोई लोकमान्य तिलकके असिधारा-पथका अनुकरण करनेका साहस जेल जानेका साहस उस समय तो न कर सका । यह तबतक न हुआ जबतक संकटोंका सामना करनेके उनके यथार्थ उत्तराधिकारी और बड़े उनके कर्मवीर मोहनदास करमचन्द गान्धी क्षेत्रमें नहीं आ गये । लोकमान्य तिलकके स्वर्गवासकी तिथि भी विचित्र रूपसे अर्थपूर्ण और उनके समस्त कर्मोंके समान रहस्यमयी है । जिस दिन गान्धी जी राष्ट्रव्यापी सत्याग्रहकी प्रथम राजनीतिक घोषणा करते हैं मानो उसी दिनके लिए लोकमान्यने अपने प्राणोंको रोक रखा था । तिथियाँ थीं : मृत्यु तिथि और आन्दोलनकी तिथि ३१ जुलाई और पहली अगस्तकी सन्धि १२ बजे रातके पश्चात् ।

लोकमान्यके क्रियात्मक कार्यक्रममें चार मुख्य बातें थीं । जिनकी सलाह पर आगे रूस-निवासी महर्षि टॉलस्टॉय ही या लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उस समय ही योजना प्रस्तुत करना ही सम्भव था । मार्क्सके कथन

के कितने वर्षों बाद रूसमें साम्यवादी शासन कायम हो सका ? प्रतिभाकी विचार-कल्पनाओंको व्यवहारकी जमीनपर उतारनेके लिए समयकी आवश्यकता होती ही है। युग तो मौसमकी तरह ही बदलते आये हैं। मार्गशीर्षमें आमका बौर बसन्त तथा ग्रीष्ममें ही आम फलते और पकते देखे जाते हैं। हाँ तो लोकमान्य तिलकके राजनीतिक जीवनके चार विशेष ध्येय थे। उनके विधायक कार्यक्रमके चार अंग थे—स्वदेशी आन्दोलन बॉयकाट राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्य। चतुर पाठकोंसे यह बात छिपी न रहेगी कि अपने विधायक कार्यक्रमकी परम साधना करते हुए इन चारों उद्देश्योंको बापूने महात्मा गान्धीने पूर्ण रूपसे उठा लिया था। लोकमान्य तिलकके पास भी ये चारों तत्त्व विरासतमें आये थे। इस देशकी राजनीतिके महान् वृद्ध पितामह दादा भाई नौरोजी थे। व सन् १९ ६ मे कांग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनके अध्यक्ष हुए। अपने अध्यक्षीय भाषणमें उन्होंने इन सूत्रोंका उल्लेख किया था। इस तरह सन् १६२७ में अँगरेजोंके इस देशमें पैर रखनेके पश्चात् सन् १ ९ में पहली बार कांग्रेसके अध्यक्षने भारतवर्षकी ओरसे स्वराज्यकी माँगका आचरण नहीं उच्चारण किया था अर्थात् अँगरेजोंके सामने स्वराज्य की बात कहकर भारतवासियोंको रो-सी उन्मादी जग गयी जब कि उन्होंने अपनी संगठित संस्थाके द्वारा नरम और गरम दलके संयुक्त दलोंके बीच स्वराज्यकी माँग की।'

इनके बारेमें लिखनेवाले एक लेखकने लिखा है कि लोकमान्य स्कूल-मास्टर-जैसे सख्त जीव लगते हैं। किन्तु उस युगमें भी लोगोंने इस आक्षेप विरोध किया था और आज भी यह बात सच नहीं मालूम होती। लोक-मान्य विनोदी स्वभावके थे। एक बार अपने बच्चोंमें बैठे थे चाय पी रहे थे। बच्चे-बच्चियोंको और उनके पिता भी लोकमान्यकी बातचीत कुछ इस तरह हुई,

बच्चा — बाबा हम तो चायके साथ बिसकिट खाते हैं तुम चायके साथ कुछ नहीं लेते ?'

बाबा 'कौन कहता है कि मैं कुछ नहीं लेता ? मैं भी लेता हूँ।

बच्चा 'रोज ?'

बाबा 'हाँ रोज ?'

बच्चा हमको तो नहीं दिखता क्या लेते हो तुम ?

बाबा अरे, मैं रोज चायके साथ समाचारपत्रोंमें की गयी गालियाँ खाया करता हूँ।

जब लोकमान्यको सन् १९ ८ में देश-निकाला हुआ तब उन दिनों भी सुदूर माण्डलेमें रहते हुए, वे 'गीता-रहस्य' की रचना करते रहे।

लोकमान्य तिलकको समझनेके लिए उनकी बहुमुखी प्रवृत्तियोंकी ओर हमारा ध्यान रहना चाहिए। आर्य जातिके गौरवकी रक्षा करनेके लिए उन्होंने वेदोंमें आर्योंका निवास-स्थान आर्कटिक समुद्रके आस पास बतलाया था और विद्वत्तापूर्ण प्रमाणों और तर्कोंसे उसे प्रमाणित किया था। इस विषयमें उनका ग्रन्थ है 'आर्कटिक होम इन द वेदाज'। लोगोंको कर्म-योगकी तालीम देनेके लिए उन्होंने 'कर्मयोग-रहस्य' के नामसे गीता रहस्य लिखा जिसका अनुवाद पूज्य स्वर्गीय पं माधवराव सप्रेने किया था। महाराष्ट्रमें पुराने गणेशोत्सवको लेकर उसमें इस प्रकार नव प्राण फूँके कि जिससे आतंकित होकर ब्रिटिश गवर्नमेण्टने कितनी ही बार गणेशोत्सवोंका होना रोक दिया। सच तो यह है कि नये हों या पुराने सामाजिक उपकरण कर्मवानोंके हाथ पड़कर युगके अनुकूल रूप देनेके लिए बाध्य हो जाते हैं।

जब लोकमान्य माण्डले जेलसे छूटने आये तब जूनका महीना था। २४ जून १ ८को उनको सजा हुई थी और जून १९१४ को छह सालके देश-निकालेके बाद उन्हें छोड़ देना चाहिए था। उन दिनों कितने ही कालेपानीके आजीवन कैदी जिन्हें बीस बरसकी सजा दी जाती थी चौदह बरस में छोड़ दिये जाते थे। भारतीय जेलोंमें साधारण कैदियोंको भी छह महीने की सजा काटनेके पश्चात् अच्छे चाल-चलनके लिए प्रतिमास प्राय चार

दिनोंकी रिआयत सजामें मिलती है। प्रतिमास वे चार दिन सजामें-से कम कर दिये जाते हैं। इस तरह लोकमान्य यदि ब्रिटिश गवर्नमेण्टकी नजरमें अच्छे चाल-चलनवाले होते तो उन्हें छात महीने छह दिनकी छूट मिलनी चाहिए थी और इस तरह उन्हें नवम्बर १९११ की १८ तारीखको छोड़ देना चाहिए था। किन्तु उन्हें डाकू और हत्यारोंसे भी बदतर माना गया। वे छोड़े गये कदाचित् तारीख १७ जून १९१४ को अर्थात् उनकी सजा पूरी होनेके केवल छह दिन पहले। सातवें दिन तो उन्हें छूटना ही था! सरकार उन्हें रंगूनसे कलकत्ता नहीं लायी इसलिए कि सारे देशमें हल्ला मचेगा। समुद्रमें भारी तूफान होते हुए भी उन्हें रंगूनसे मद्रास समुद्रके रास्ते लाया गया और मद्राससे उन्हें पूना ले जाया गया। किन्तु लोकमान्यको न छोड़कर यह प्रचार तो सरकारने ही होने दिया था कि जून सन् १९१४ में लोकमान्य छूटेंगे। लोकमान्य राजद्रोहमें जेल गये थे किन्तु उन्होंने अंगरेजों या ब्रिटिश-शासनके खिलाफ छोटे बमगोला उपयोग नहीं किया था। उनका एकमात्र अपराध था उनका भारतवासी होना। कहा यह गया कि लॉर्ड मिण्टो अपने वाइसराय-कालमें लोकमान्यको छोड़ देना चाहते हैं किन्तु बम्बईका गवर्नर सिडनहम लोकमान्य तिलकका छूटना पसन्द नहीं करता था। इसीलिए लोकमान्य तिलक लॉर्ड मिण्टोके चले जानेके बाद वाइसराय लॉर्ड हार्डिञ्जके जमानेमें छूटे। जिन दिनों लोकमान्य तिलकको कालापानी हुआ था उन्हीं दिनों एक मिस्टर मेक्सिमस नामके अंगरेजने स्वयं बादशाहके खिलाफ अपने 'लिबरेटर' पत्रमें राजद्रोही लेख प्रकाशित किये थे किन्तु उसे केवल नौ माहकी सादी सजा दी गयी। उन्हीं दिनों मार्टिन नामके एक अंगरेज मजदूर-नेताको प्रत्यक्ष राजद्रोहका धंधा करनेपर और यह साफ कहनेपर कि मैं स्वयं विद्रोही हूँ मेरा बाप भी विद्रोही था राजा और सरकारका हुक्म तोड़ना उसकी आज्ञा भंग करना मैं अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ—सजा मिली केवल कुछ हफ्तोंके कारावासकी। पर एडवर्ड कारसनका उन दिनोंका मुकदमा तो सबपर प्रकट है। कारसनने

हथियार एकत्रित किये, बारूद और गोले जमा किये और ब्रिटिश राज्यके खिलाफ़ षड्यन्त्र किया तो भी उस जमानेके इंग्लैण्डके मन्त्रिमण्डलने 'सर' की उपाधि छीन लेनेके सिवाय एडवर्ड कारसनका और क्या बिगाड़ किया ? सत्य तो यह है कि लोकमान्यकी भावनाओंका कारण लोकमान्यका राजद्रोह नहीं था किन्तु गुलाम भारतीय जनतामें विद्रोह न करनेकी कमज़ोरी थी। इसीके कारण अँगरेज अपराधी भयंकर होकर भी फूल-जैसी सजा पाकर छूट जाता था और भारतीय नेता प्रतिष्ठित होकर भी देश-निकालेकी सख्त सजा पानेको बाध्य था। नहीं तो गोरोंको भड़कानेका जो अपराध लोकमान्यपर लगाया गया और पारसी समाजके जस्टिस दावरने जूरीमें मतभेद होते हुए भी जो सजा लोकमान्यको सुनायी वह दावर ही के तर्कसे असंगत थी। स्वर्गीय जस्टिस दावरका तर्क था कि भारतवर्षकी अज्ञानी जनताको भड़काया गया। किन्तु जनता अज्ञानी थी। ब्रिटिश गवर्नमेण्टके जनताको अज्ञानी रखनेके षड्यन्त्रोंके कारण जनता भड़क ही नहीं सकती थी और न वह भड़की। इस तरह सजा देना अर्थहीन हो गया। किन्तु इस विषयमें दावरकी आज्ञा सुननेके पश्चात् लोकमान्यने जो कहा वह सचमुच भारतवर्षकी नाड़ी परखनेवाले नेताके योग्य ही था। उन्होंने कहा कि जूरी-ने यद्यपि मुझे दोषी ठहराया है तथापि मेरा अन्तरात्मा मुझसे कहता है कि मैं निर्दोष हूँ। आपसे भी ऊपर एक शक्ति है जो विश्वका नियमन और न्याय करती है। उसकी इच्छा है कि मैं कष्ट भोगूँ और जनताको लाभ पहुँचाऊँ। और आज इस बातसे कौन इनकार करेगा कि लोकमान्य तिलकके पश्चात् महात्मा गान्धीके आन्दोलनने बच्चों तकके लिए भारतकी ब्रिटिश जेलोंको खिलवाड़ नहीं बना दिया था ?'

उन दिनों लोकमान्य तिलक अँगरेजोंके लिए महान् भयंकरता थे। जब लोकमान्य कलकत्ता कांग्रेससे लौटे तब इलाहाबादमें उनके स्वागतके लिए सभा की गयी। इन पंक्तियोंका लेखक उन दिनों प्रयागमें था। उनकी सभाके लिए एक विद्यालय भवनका कमरा अधिकारियों-द्वारा दी' जानेके बाद

भी नहीं दिया गया। एक नरम नेताने उस सभाके लिए कुरसियाँ भी नहीं मिलने दीं। परिणामतः सभा एक सज्जनके निजी बंगलेमें हुई। उस सभाकी सफलतापर तत्कालीन अंगरेजी सरकार-समर्थक और उन दिनों एक अंगरेज-द्वारा सम्पादित 'पायोनियर' इतना भड़का कि उसने आवेश और क्रोधमें लिख मारा कि एक व्यक्तिवादीकी सभामें तीन हजार आदमी! उसने उस समय तत्कालीन अंगरेज सरकारको भी भला-बुरा कहा था। किन्तु उसी अंगरेज सरकारको गान्धी-युगमें शासन-प्रणालीको बदलते उद्यानमें भाषण सुनने और विद्रोही जनताकी छात्रोंकी उपस्थितिके दिन देखने पड़े। तथा उसे वीरवर सुभाष बोसके रूपमें अंगरेजोंके खिलाफ युद्धक्षेत्रमें संगठित सशस्त्र विद्रोह भी देखना पड़ा। लोकमान्य और महात्माजीमें जो लोग विरोध देखते रहे हैं उन्होंने न लोकमान्यको पहचाना न भारतवर्षको।

'लोकमान्य' इस देशकी प्रतिभा, चरित्र और पात्रतामयी स्वराज्य भावनाकी अनवरत सिद्धिका सम्मिलित नाम है। गान्धीको सत्य और अहिंसा-को मानकर चलें, और लोकमान्य इस देशकी अवतार-परम्पराके अनुकूल यह माना लेकर चलें कि यहाँ देशभक्त होगा या भारतीय स्वतन्त्रताका इच्छुक होगा वहाँ वह लोकमान्य तिलकका सहारा पाता रहेगा भले ही वह किसी धर्मके हो। ४ नवम्बर १९१९ को ब्रिटिश मजदूर दलके नेता तथा 'डेली हेरल्ड' के सम्पादक श्री लान्सबरीने उन्हें लिखा था — आप जब इंग्लैण्डमें थे तब आपके साथ काम करनेका गौरव और आनन्द दोनों मुझे मिले। आपकी अपने देशके प्रति निष्ठा सचमुच अपूर्व है। हम और आप भले ही दो दीखें वास्तवमें तो हम एक ही हैं। कर्नल वेजवुडने अपने ६ नवम्बर १९१९ के पत्रमें लिखा — यहाँ इंग्लैण्डमें वर्ग-भेद कम होता जा रहा है और भारतवर्षमें गोरे लोगोंकी मनमानी अब नहीं चलेगी। किन्तु वेजवुड महाशयने यह भी स्पष्ट लिख दिया था कि 'मजदूर दलके भरोसे रहना भी बहुत बुद्धिमत्ताकी बात नहीं है। अब यदि

मजबूर होकर मन्त्रिमण्डल बने तब भी बात तो वह को नहीं रहेगी। मैं अपने ही दलके सम्बन्धमें इतनी कटु बात लिखूँ, इसका मुझे भी दुःख है। किन्तु इस मामलेमें भी आदर्शपर चलनेवाले लोग बहुत कम हैं।

इस समय मैं स्वातन्त्र्य वीर सावरकरजीके भाई श्री गणेश दामोदर सावरकरके एक पत्रके कुछ वाक्य उद्धृत करना चाहूँगा जो उन्होंने फरवरी १९२० का क्वचित् लन्दनसे लोकमान्यके पास पहुँचाया था। उसमें यह भी लिखा था कि साम्राज्यके अन्तर्गत स्वराज्यका ध्येय हम लोगोंको तृषा शमन-जैसा नहीं लगता। नहीं नहीं यह तो आज भी हमारी आकांक्षाओंका ध्येय है। अधिक क्या हमें तो लगता है कि विश्व-बन्धुत्व भी होना चाहिए। सम्पूर्ण पृथ्वीका एक ही राष्ट्र उसके स्त्री-पुरुष एक ही घरके पारिवारिक और इस दृष्टिसे सब पदार्थोंका लाभ सबको समानतासे मिले—हमारा यही मत है।

इस पत्रमें साम्प्रदायिकता हिन्दू इस्लामियत आदिका कहीं नाम नहीं। लोकमान्यके नामपर १५ अप्रैल १९१९ को मिस्टर ऐटलीका जो पत्र आया था वह दूर-दृष्टिकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वका माना जाना चाहिए क्योंकि उस पत्रके लिखे जानेके अट्ठाईस वर्ष और चार महीनेके पश्चात् इन्हीं ऐटलीके ही प्रधान-मन्त्रित्वमें भारतवर्षको स्वराज्य प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने पत्रमें एक वाक्य यह लिखा था कि मैं भावनासे होम-रूलर हूँ।" यह लोगोंको ध्यानमें होगा ही कि स्वराज्यकी हलचलको और अधिक बलवान् बनानेके लिए लोकमान्य तिलकने उन दिनों आन्दोलनकारी भारत-वासियोंकी संस्था कायम की थी होम-रूल लीग और स्वराज्य शब्दोंने लोकमान्य तिलकके स्वर्गवासके एक मास पहले ही होम-रूल लीगकी अध्यक्षता स्वीकार की थी। श्री ऐटलीके पत्रका दूसरा वाक्य जो मैं उद्धृत करना चाहता हूँ वह है यह स्पष्ट दीख पड़ता है कि आगेके कुछ वर्षोंमें विश्वके समस्त लोगोंका ध्यान भारतवर्षकी ओर जायगा।" इसकी दूर-दृष्टि-का पत्र लोकमान्यके विदेशी पत्रव्यवहारकर्ताओंमें शायद ही किसीका

हो। लोकमान्यकी लन्दनकी हलचलोंसे उस समय भारतीय स्वराज्यका ऐसा वातावरण जागृत हुआ कि ४ सितम्बर १९१९ को लन्दनकी भारतीय कांग्रेसकी रिपोर्टमें यह भी लिखा गया है कि 'गरम दलके प्रतिनिधियोंने लन्दनमें अपना कार्यालय बन्द कर दिया है। और वे भारतको लौट रहे हैं।

लोकमान्य तिलक प्रत्येक क्षण भारतीय स्वतन्त्रताको और भारतीय संस्कृतिको एक-दूसरेकी पूरक समझते रहे। यह उनके स्वराज्य आन्दोलन और उनके सांस्कृतिक-ग्रन्थोंकी रचनासे स्पष्ट दिखायी देता है। काशी नागरी प्रचारिणी सभाका अभिनन्दन स्वीकार करते हुए लोकमान्यने हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकार किया था। केवल वे स्वराज्यकी भाषामें 'बाणेदारपणा' (तेजस्विता) आवश्यक मानते थे। और जब इन पंक्तियोंके लेखकके सभापतित्वमें सन् १९३१ में नागपुर विश्वविद्यालयकी साहित्य-समितिमें तत्कालीन उपकुलपति वेङ्क्रिमेस्ट कर्नल केदार महाशयने सभापतिके नामका प्रस्ताव उपस्थित करते हुए हिन्दी भाषाकी बधाई दी कि उसमें 'बाणेदारपणा बहुत है तब सभाके सभापतिने केदार महाशयको धन्यवाद देते हुए कहा था मैं हिन्दीके प्रति आपके कथनका कृतज्ञ हूँ क्योंकि लोकमान्य तिलक हिन्दीमें यही गुण चाहते थे।

यह लेख अधूरा रहकर भी और भी अधूरा रह जायगा यदि मैं यह उल्लेख न करूँ कि देशमें एक राष्ट्रीय-मण्डल स्थापित था जो लोकमान्य तिलकके विचारोंके अनुकूल गतिविधियोंका संचालन करता था मध्यप्रान्तमें उसका संचालन स्वर्गीय डॉक्टर मुंजे किया करते थे और बैरिस्टर अभ्यंकर, डॉ खरे श्री वारलिंगे डॉ चोलकर, डॉ परांजपे तथा अन्य कितने ही सज्जन उस मण्डलके सदस्य थे लोकमान्य तिलकके प्रसिद्ध मराठी पत्र 'केसरी का हिन्दी संस्करण नागपुरसे निकलता था जिसके सम्पादक धुरन्धर पण्डित माधवराव सप्रे थे तथा जिसमें आजके आयुर्वेद पंचानन वयोवृद्ध पं जगन्नाथप्रसाद शुक्ल स्वर्गीय पं लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि

जिनमें ही सज्जन काम करते थे। लोकमान्यके दलके हिन्दी-सम्पूर्ण काम करनेवाले बलवान् व्यक्ति रहे हैं साहित्य-वाचस्पति आचार्य पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी। उनकी लेखनी 'भारत मित्र' के द्वारा तथा उसके पश्चात् भी उस राष्ट्रीय तेजस्विताको व्यक्त करती रही है जिसका लोक-मान्य तिलकके युगमें अभिषेक हो चुका था।

लोकमान्यके मतका समर्थन अंगरेजी दैनिकोंमें 'अमृतबाजार पत्रिका' तथा देशके लिये और पत्र करते रहे। हमें यह सदैव ध्यानमें रखना चाहिए कि महात्मा गान्धीने लोकमान्य तिलकके पश्चात् उनके स्वाधीनताके संकल्पको पूर्ण किया और लोकमान्य तिलक जो देशव्यापी बल और प्रवाह तथा स्वराज्यको जो उत्कण्ठा इस देशमें छोड़ गये थे उस भूकम्पको यदि महात्मा गान्धी-जैसा चतुर मार्गदर्शक न मिलता तो भारतीय स्वतन्त्रता विस्फोट बढ़ानेवालों और तेज चलनेवालोंका एक असफल प्रयोग मात्र ही बनी रहती। जिस पीढ़ीने स्वराज्य प्राप्त किया है उसने महात्मा गान्धीकी भुजाओंमें खेलकर प्राप्त किया है किन्तु उसका उत्तराधिकार यह है कि वह लोकमान्य तिलकके कन्धोंपर बैठकर आयी थी।

चरित्र निर्भीकता और राष्ट्रके बलके नाते पहुँचनकारी कार्यो विदेशोंके भारतीय आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रताका विदेशी आन्दोलन सबको लोकमान्य तिलकसे प्रेरणा और सहायता मिलती रही। एक युग था जब स्वर्गीय अरविन्द घोष और उनके दलके क्रान्तिकारी समर्थक केवल लोकमान्य तिलक थे और वे सब उनके अनुयायी थे।

भारतीय स्वतन्त्रताकी नींव रखनेवाले चरणोंमें शत-शत वन्दन।

महात्मा गान्धी

१

महात्मा गान्धीको सबसे पहले मैंने लखनऊकी कांग्रेसमें देखा था। उन दिनों वे मोहनदास करमचन्द गान्धी कहलाते थे। देशकी राजनीतिके सूत्रधार नरम दलकी तरफसे उन दिनों सर फ़ीरोज़शाह मेहता थे। वे लखनऊ आये हुए थे। सूरतमें सन् १९०७ में झगड़ा होनेके बाद कांग्रेस पर फ़ीरोज़शाह मेहता और स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखलेके नरम दलके हाथोंमें थी और लखनऊमें ही नरम और गरम दोनों दल मिले। दूसरी ओर देशकी नयी पीढ़ीका मान्य विचारक गरम दल था। उस दलके नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक थे जो काले पानीकी सजा काटकर बर्माकी माण्डलेकी जेलसे ताज़ा ही आये हुए थे। तीसरी तरफ़ गान्धीजी थे जिनका एक-एक शब्दको जन-जीवन सुनता था और मानता था। उन दिनों महात्मा गान्धी 'कर्मवीर' कहलाते थे। उन्हें लोग कर्मवीर मोहनदास करमचन्द गान्धी कहते थे। गान्धीजी कांग्रेस कैम्पमें भी अपने सिद्धान्तके अनुसार चक्की पीस रहे थे। एक बैरिस्टर और इतना बड़ा नेता चक्की पीसे इससे अँगरेजोंके साँचेमें ढले हुए नेताओंको घृणा-सी होती थी और राष्ट्रीय नेता गान्धीजीकी उपेक्षा करते थे। किन्तु ग्रामीण उन्हें देखना चाहते थे जानना चाहते थे उनपर कुरबान जाते थे। जब महात्माजीसे स्वर्गीय भाई गणेशशंकरजीने कानपुर आनेको कहा तब निमन्त्रण स्वीकार करते हुए गान्धीजीने कहा — हाँ कानपुरके और भाई भी मेरे पास आये थे। उनसे मैंने तो कहा है कि 'प्रताप' का सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी आवे तो बात करके जवाब दूँगा। तो अब मैं कानपुर आऊँगा। पर मैं तुम्हारे ही पास ठहरूँगा। भाई गणेशशंकरजीने कहा — मेरे छापेखानेमें तो धूम रहती

है। हम कानपुरके लोग आपको बहुत अच्छी जगह ठहरायेंगे।" गान्धीजी खिलखिलाकर बोले "भाई, मुझे अच्छी जगह नहीं ठहरना है, मुझे तुम्हारे ही पास ठहरना है। अच्छा जाओ देर होती है।" उसी समय गणेशजी तथा हम सब लोग उठकर चले गये। चौथे ही दिन मैंने गान्धीजीको प्रथम प्रथम देखा। वे उस समय पत्र लिखनेमें व्यस्त थे। एक साधारण-सी कलम थी, फाउण्टेनपेनकी जगह बबूलके काँटे रखे हुए थे। और प्रताप प्रेसके नलपर उनके कपड़े धुल रहे थे। दोपहरके भोजनका समय होते ही उन्होंने अपना लिखना बन्द कर दिया और चर्चा करने लगे। जो प्रश्नोत्तर हुए उनका कुछ अंश मेरे पास था सुरक्षित है। प्रश्न कभी गणेशजी करते और कभी कानपुरके थियोसॉफिकल हाई स्कूलके हेड मास्टर श्री परांजपे। मैं केवल गान्धीजीके प्रश्नोत्तर ही दे रहा हूँ

प्रश्न : मैं और मेरे मित्र ही सशस्त्र क्रान्तिमें विश्वास करते हैं। गान्धीजी बीच ही में बोले "हाँ सो तो ठीक है। मैं भी क्रान्तिमें विश्वास करता हूँ किन्तु मैं उस क्रान्तिको नहीं समझ सकता जो क्रान्ति अपने लिए की जाती है और औरोंको मारने सीखती है। कहावत है कि बहिश्त तो खुद मरकर ही देखा जा सकता है।

प्रश्न : तब तो आपके कार्यमें सशस्त्र क्रान्तिवादियों तथा राष्ट्रीय दलके लोगोंकी भारी मदद दरकार हो जायेगी?

उत्तर : अफसोस तो हुआ है यह नहीं कि एक-दो आदमी मारे गये हैं और विदेशी राज्य ज्यों-का-त्यों बलवान् है। मेरे जानमें आपके प्रयत्न कारगर नहीं होते। एक तो देशमें हिंसा बढ़ेगी और दूसरे जिस कार्यमें देशको बहुत देर लग रही है मेरा तो विचार है कि वह जल्दी हो जायगा।" [illegible] को महात्माजीके इस उत्तरसे बेचैन हो उठे। उन्होंने कहा : "अंग्रेज इतने सीधे नहीं हैं कि हमारे प्रयत्न न करनेपर वे भारतवर्षको स्वराज्य दे दें।"

गान्धीजी "यह मैं कब कहता हूँ कि बिना प्रयत्नके कुछ मिलेगा। मैं तो कहता हूँ कि इस देशके जन-जीवनको प्रयत्न करना पड़ेगा तैयारी

करनी पड़ेगी किन्तु वह दूसरेको मारकर नहीं स्वयं मरकर। मारनेमें क्या लगता है, मैं भी तलवारसे गले काट सकता हूँ किन्तु औरोंके गले काटने की अपेक्षा अपनी निर्बलता अपनी झिझक अपनी कायरता और अपने बड़े बननेकी इच्छाको काटना बहुत मुश्किल है।"

मैंने देखा मनेकशी गान्धीजीके कथनसे सन्तुष्ट नहीं हुए। मनेकशाजीके साथी भी नहीं किन्तु यह सब सोच गये कि प्रेरणामयी वाणीमें बोलनेवाला कोई नेता हमारे बीचमें है और इसीलिए हम सबने मिलकर गान्धीजीको प्रणाम किया और विदा ली।

गान्धीजीको एक बार मैंने खेड़ामें देखा। उन दिनों खेड़ाका सत्याग्रह चल रहा था। बहुत सोचता हूँ याद नहीं आता कि वल्लभभाई वहाँ थे? कृपलानीजी थे। गान्धीजी बीमार हो गये। सख्त बीमारी थी। तुलसीदासने एक जगहपर भगवान्के पछतानेपर लिखा है,

"प्रभु सभय पछतानि सुहाई
हरहु भरत मन के कुटिलाई।"

इस भावनाका प्रत्यक्ष प्रथम दर्शन खेड़ामें हुआ। अपने बीमार हो जाने के कारण गान्धीजी पश्चात्ताप करते हुए कह रहे थे 'मैं तो ऐसा कहूँगा कि मैं भगवान्के सामने गुनहगार हूँ। इतने लोगोंको इकट्ठा कर लिया सत्याग्रह चला दिया। लोग बेलगाम जा रहे हैं गवर्नमेंटका अफसर तो खेड़ाके किसानको दुश्मन-जैसा देखता है और किसानोंको ऐसी हालतमें छोड़कर मैं बीमार पड़ गया।' उस समय ऐसा लगा कि जीवनकी प्राकृतिक कठिनाइयोंको भी अपराध समझनेवाले और अपनेको जरा भी नहीं क्षमा करनेवाले महान् सन्तके दर्शन हुए। उस समय ऐसा लगा कि भगवान्के किसी सच्चे भक्तके दर्शन हो रहे हैं। गान्धीजीकी बीमारीमें यह तय हुआ कि वे लोगोंसे अधिक मिलें-जुलें नहीं और किसीको उनके पास न जाने देनेके लिए कृपलानीजी मकानके दरवाजेपर जा बैठे। उस समय मैंने कृपलानीजीकी गान्धी-भक्ति और गान्धीजीका कृपलानी-प्रेम अद्भुत रूपमें

देखा। कृपलानीजी बोलते तो जो कुछ भी मुँहमें आ जाये बोलते जाते थे। और गान्धीजीके प्रति कटु-से-कटु शब्दोंका उपयोग करनेके बाद भी गान्धीजी इस प्रकार हँसते थे मानो कोई उनका प्रिय भजन सुना रहा हो उस समय मनकी स्थिति ऐसी हो गयी थी कि

'जिना क्या बुराई कि सराहा कुनसाल हो'

एक बार लोकमान्य तिलकके साथ गान्धीजी बम्बईसे ऑल इण्डिया काँग्रेस कमेटीकी बैठकमें जा रहे थे। यह १४ जनवरी सन् १९२ की घटना है। जबलपुर स्टेशनपर मेल ट्रेन काफी देर तक ठहरती थी इसलिए लोगोंने स्टेशनपर ही एक सभाका आयोजन किया। लोकमान्य तिलक ट्रेनसे उतरकर सभामें आये भाषण भी किया। गान्धीजीसे आग्रह किया किन्तु वे उतरे नहीं। उन्होंने स्पष्ट कहा "मैं जीहुक्म कहना कभी नहीं मानूँगा। आप उनका काम कीजिए किन्तु मैं आपकी सभामें जाकर व्याख्यान देनेका ठेका नहीं मानता।" परिणाम यह हुआ कि गान्धीजी स्टेशनपर लगातार हरिजन-उद्धारकी चर्चा करते रहे और जबलपुरकी जनता प्रांगणमें बैठी प्रतीक्षा करती रही।

सन् १९२१ के मार्च महीनेमें बाबू गोविन्ददासजी तथा मित्रोंने कहा कि मैं वर्धा जाकर गान्धीजीको जबलपुर ले आऊँ। गान्धीजी साथ आये। जनतामें उत्साह भी था। जब वे तीन मोटरें नागपुर होकर जबलपुर रवाना हुईं तब मैंने सिवनीमें महात्मा गान्धीको भाई दुर्गाशंकरजी मेहताके यहाँ ठहरा दिया। मेहताजीके यहाँ गान्धीजी और उनके दलके ठहरनेकी बहुत अच्छी व्यवस्था की गयी किन्तु जब सिवनीसे मोटरें जबलपुरके लिए रवाना हुईं तब मार्गमें भाई अमृतलालजीने मुझसे इस बातके लिए नाराजी प्रकट की कि जब मेहताजीने वकालत नहीं छोड़ी है तब गान्धीजीका उनके यहाँ ठहरना उचित नहीं हुआ।

यह खबर किसी तरह भाई दुर्गाशंकरजी मेहताको लग गयी। उन्होंने (चूँकि उनके बाद ही मैं जेल चला गया था) अपनी वकालत छोड़नेकी

खबर मुझे बिलासपुर जेलमें दी और उस दिन राष्ट्रीय क्षेत्रमें आनेके पश्चात् मैं हृदयसे आजन्म प्रखर कांग्रेसवादी बने रहे। इस बीच एक विनोदका प्रसंग याद आता है। मैं भूल गया हूँ कि यह घटना कहाँ हुई। महात्मा गान्धी जिस भवनमें ठहरे हुए थे उसके बगलके कमरेमें स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेल ठहरे हुए थे। उस समय 'बेकारी भरत' गुजराती ग्रन्थके लेखक श्री शंकर लालजी पारीख भी वहीं ठहरे हुए थे। विट्ठलभाई उस समय सिगरेट पी रहे थे। महात्माजी हँसते हुए बोले जो कि उनके सिगरेटपर बहुत आनंद दायक व्यंग्य था 'केम विट्ठलभाई शुं करी रह्या छो?*' विट्ठलभाई व्यंग्यको तुरन्त ताड़ गये बोले "कांग्रेसके प्रस्तावका पालन कर रहा हूँ। शंकरलालजी डरते डरते गुजरातीमें बोल उठे जिसका अर्थ था यह कैसे?' विट्ठलभाई खिसियाकर अपना हाथ अपने सिरसे लगाकर बोले 'अरे कांग्रेसका प्रस्ताव देखो मेहरबान तुमने विलायती चीजोंका बोन फायर पास किया है और मैं विलायती चीजोंका बोन फायर कर रहा हूँ।" ऐसा कहकर उन्होंने एक हाथसे अपनी चितकबरी दाढ़ीपर हाथ फेरते हुए दूसरे हाथकी जलती हुई सिगरेट मुँहमें पेले हुए लम्बा कश खींचा और वातावरण हँसीसे भर गया।

भारतवर्षने एक बहुत बड़ा द्रष्टा एक बहुत बड़ा ऋषि एक बहुत बड़ा योद्धा एक बहुत बड़ा कवि खो दिया जो जिन्दगीकी घड़ियोंको जब हिसाबसे गिनता था तब वाणीसे बोलता था। लोक-जीवनकी करुणाके कोटि-कोटि स्वर पुरुषार्थके संकेत बनकर जिसकी वाणीमें फूट पड़ते और जिसकी क्रियामें टूट पड़ते थे जिसका एक अलबेला काव्य हमने खो दिया। उसकी कलम जब उठती भाषाका सुहाग और देशका भाग्य लिखती थी। देशकी पतित पीढ़ियाँ उसके अन्तःकरणमें पुकार उठती थीं। ऐसा न होते हुए भी जिसकी बात राजाज्ञाकी तरह पालन की जाती बड़ो न होते हुए

---

* क्यों विट्ठलभाई क्या कर रहे हो?

भी जिसकी बात धर्माज्ञाकी तरह मस्तक झुकाकर स्वीकार की जाती स्वर भावुक न होते हुए भी जिसकी बात सुनकर सहस्र-सहस्र प्राणियों और मत-मत संस्कारोंकी रक्षाके लिए धन बरस पड़ता और प्रियतम और प्रियतमाका आकर्षण न होते हुए भी जिसका ईमान और बलिदान जिसकी कीर्ति और स्मृति पीढ़ियोंमें दुहरायी जाती उसे हमने खो दिया। जिसके नसोंमें दुखियोंकी चीत्कार भर जाती जिसकी साँसोंमें पददलितोंकी झंकार सुनायी पड़ती जिसकी मुद्रामें जिसके परित्राणकी मनुहार होती और जिसके स्वरमें साम्राज्योंको कम्पित करनेकी हुंकार होती उसी महान् मानव-काव्य अथवा काव्य-मानवको हमारे देशकी भूमिने जन्म दिया और खो दिया।

२

सन् १९२ के सितम्बर महीनेमें कलकत्तामें स्पेशल कांग्रेस हुई। लोकमान्यके स्वर्गवासको कुछ ही दिन हो पाये थे और गान्धीजीके शब्दोंके अनुसार तो यदि कोई व्यक्ति है जो भारतीय स्वतन्त्रताके लिए प्रावनाम दिन और रात निरन्तर लीन रहता है और अपनी सम्पूर्ण शक्तिके साथ यह सोचता रहता है कि भारतवर्षके लिए मुक्ति प्राप्त की जाय तो वह व्यक्ति है लोकमान्य तिलक। लोकमान्य तिलककी मृत्युके बहुत दिन पूर्व एक बार महात्मा गान्धीने यह भी कहा था कि 'भारतीय स्वतन्त्रताके लिए लोकमान्य तिलककी भक्ति आश्चर्यजनक है यदि वे इस समय सो न रहे होंगे तो मुझे पूरा भरोसा है कि इस वक्त वे भारतीय स्वराज्यके सम्बन्धमें ही कुछ सोच रहे होंगे या किसीके साथ उसी विषयपर बहस कर रहे होंगे।

लोकमान्यके स्वर्गवासकी खबर पाकर उनके उदास मुँहसे एकदम निकल पड़ा था 'देशके आन्दोलनकी कठिनाइयोंमें अब मैं किसके पास जाकर सलाह करूँगा और सहायता प्राप्त करूँगा। अब मैं किसके पास जाकर कहूँगा कि सम्पूर्ण महाराष्ट्र इस कार्यमें लग जाये। अभीतक मैं स्वराज्यके लिए काम करते हुए भी स्वराज्य शब्द मुँहसे नहीं निकालता था परन्तु अब मेरे लिए आवश्यक हो गया है कि मैं लोकमान्यकी आवाज को समयमें न डूब जाने दूँ। मैं उनकी आवाजको जीवित और प्रभाव ठीक रखूँ। हमारे इस महान् योद्धाने भारतीय स्वतन्त्रताकी जिस पताका को ऊँचा रखा उसे एक क्षणके लिए भी झुकने नहीं देना है।" गान्धीजी अहमदाबादसे एकदम बम्बई पहुँचकर लोकमान्य तिलककी स्वर्गारोहण यात्रामें शामिल ही नहीं हुए थे प्रत्युत उस समयकी अपार भीड़के बीचमें

लोकमान्यको धोखा भी दिया था।

कलकत्ता कांग्रेसके बाद महात्मा गान्धीके कार्योंकी विशेषताको जाननेके लिए समयकी पुस्तकके पन्नेके पन्ने पीछेको पलटने पड़ेंगे। जब सन् १९०६ में कलकत्तामें कांग्रेस हुई थी तब उसके अध्यक्षके नाते गुजराती मातृभाषा वाले किन्तु देशकी स्वतन्त्रताके परम भावुक भारतीय राष्ट्रके पितामह श्री दादाभाई नौरोजीने सबसे प्रथम अपने अध्यक्षीय भाषणमें स्वराज्य शब्दका उच्चारण किया था और उस शब्दके साथ तीन बातोंको और मिलाया था। इस तरह ये कुल मिलाकर चार बातें थीं स्वदेशी आन्दोलन विदेशी बायकाट राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्य। लोकमान्य तिलकने अपने भाषण-द्वारा वक्तव्य-द्वारा और मराठी 'केसरी'में लिखे अपने लेखों-द्वारा इन चार बातोंपर बहुत जोर दिया था।

भारतीय स्वतन्त्रताके आन्दोलनका इतिहास जाननेवालोंसे यह बात छिपी नहीं है कि लोकमान्य इन्हीं चार बातोंके लिए जीवन-भर लड़ते रहे। उन दिनों एक होम-रूल लीग श्रीमती स्वर्गीया एनीबेसेण्टके द्वारा चलायी जा रही थी और दूसरी होम-रूल लीगका संचालन स्वयं लोकमान्य तिलक कर रहे थे। लोकमान्यका स्वर्गवास होते ही गान्धीजीने स्वराज्य आन्दोलनका यह भार अपने सिरपर उठा लिया। वे होम-रूल लीगके अध्यक्ष चुन लिये गये। उस समय कलकत्ता विशेष कांग्रेसके अध्यक्ष पंजाब-केसरी स्वर्गीय लाला लाजपतरायने कहा था 'मेरा हृदय गान्धीजीके साथ जाता है और मेरा मस्तिष्क दूसरी ओर जा रहा है।' गान्धीजीने अपनी नवीन अहिंसक योजना पूर्णरूप देशके सामने रख दी थी। उस समय कलकत्ता स्पेशल कांग्रेस में गान्धीजीकी अहिंसापर प्रबल व्यंग्य करते हुए बम्बईके देशभक्त बैरिस्टर बैप्टिस्टाने अखिल भारतीय कांग्रेसकी सब्जेक्ट कमेटीकी* बैठकमें कहा था 'आपके अहिंसाके आन्दोलनसे देशको स्वराज्य मिलना तो दूर, अँगरेजोंका

---

* विषय-निर्वाचनसमिति।

कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा। आप स्वयं ही अव्यवस्था बढ़ने देनेके बजाय अहिंसाके नामपर एक 'लॉ' पुलिस मैन'का काम शुरू किया करते हैं और प्रकारान्तरसे देशकी व्यवस्था रखनेमें अंगरेजी शासनको बल पहुँचाते हैं।

हम लोग सब उन दिनों लोकमान्य तिलकके झण्डेके नीचे स्वराज्यका आन्दोलन करनेका काम करते थे अतः गान्धीजीकी बात उनकी अहिंसाकी वजहसे कारण लोगोंकी समझमें बिल्कुल नहीं आती थी। मैं यों कलकत्ता कांग्रेसमें ठहरा तो बंगला-निवासी (अब स्वर्गीय) हरिदास चटर्जीके कैमडाकमस्ट्रीटवाले मकानमें था। मेरे साथ ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान थे और आजके मध्यप्रान्तीय मन्त्रिमण्डलके मन्त्री श्री समुन्दरसिंहजी मुझे खूब याद है मेरे साथ ही कलकत्ता गये थे और कलकत्तासे लौटे थे। उन दिनों वे जोधपुरकी शासनीय माध्यमिकशालाकी अध्यापकी छोड़कर बुरहानपुर चले गये थे और वकालत करने लगे थे। योग ऐसा आया कि वकालत करते ही उन्हें महात्मा गान्धीके आन्दोलनके अनुसार वकालत छोड़नी पड़ी। उस समय कलकत्तामें महात्माजी जहाँ ठहरे हुए थे वहाँकी व्यवस्था स्वर्गीय भाई जमनालालजी बजाजके हाथमें थी। मैं जब अपने मित्रोंके साथ कलकत्तेमें महात्माजीके कमरेमें गया तब वे कुछ मित्रोंसे बातचीत कर रहे थे। कांग्रेसके महामन्त्री लखनऊके एडवोकेट पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र उनकी बाजूमें बैठे हुए थे। और वातावरणमें उल्लासकी अपेक्षा उदासीनता छायी हुई थी।

लोग स्वराज्यके आन्दोलनको खूब समझते थे। किन्तु अहिंसासे बहुत घबराये हुए थे। गान्धीजीने अपना दृष्टिकोण समझाते हुए यह बताया कि एक बार अमलमें लाकर देखिए तो आपको पता चल जायगा कि अहिंसाकी शक्ति ऐसी है जिसका सामना हिंसाकी शक्ति कर ही नहीं सकती। हाँ होनी चाहिए वह सच्ची अहिंसा। नकली अहिंसा तो हिंसासे भी अधिक हानिकारक है। मुझे लगा कि यह अहिंसा तो अपने बूतेका रोग नहीं है। किन्तु जब कांग्रेसके मंचपर चढ़कर महात्मा गान्धीने अपनी

अहिंसावादी बात कही और मौलाना समझायी तब मानो प्रचण्ड करतल-ध्वनिसे पण्डाल गूँज उठा और महात्मा गान्धीकी बातका समर्थन किया। उस समय कितने ही लोग तीन बातें सोचते थे। एक दल यह था जो सोचता था कि अहिंसा गान्धीजीकी सनक मात्र है, वह बिलकुल नहीं चल सकती। कुछ लोग यह सोचते थे कि अहिंसापर जोर देनेसे कांग्रेस बिखर जायेगी और उसकी प्रगतिकारी शक्तियाँ कांग्रेस छोड़कर चली जायेंगी। तीसरा एक दल ऐसा भी था जो सोचता था कि कदाचित् महात्माजी स्वयं अहिंसापर विश्वास नहीं करते वे केवल राजनीतिक चतुराईके कारण अहिंसापर जोर दे रहे हैं। इस तरह सोचनेवालोंमें भारतवर्षके शिक्षित लोग ही अधिक थे। हम लोग जब कलकत्तासे लौटे तब यह प्रभाव लेकर चले कि जनता महात्माजीका साथ देनेके लिए तैयार है और बूढ़े नेता नहीं मानते कि अहिंसासे काम चल सकेगा। यही वह कांग्रेसका अधिवेशन जो प्रतिवर्ष दिसम्बरकी छुट्टियोंमें हुआ करता था हमारे प्रान्तमें नागपुर ही में होनेवाला था और उत्तर और दक्षिणके विभाग नेता अहिंसाको हराने की प्रतिज्ञा-सी लेकर कलकत्तासे चले थे। किन्तु देशके जो नये नेता थे वे स्पष्ट गान्धीजीके साथ दिखायी देते थे। उस समयकी तीन महान् समस्याएँ थीं खिलाफतका झगड़ा मुसलमानोंके पूर्ण सन्तोषके साथ निपटे भारतवर्षको स्वराज्य मिले तथा भारतका अपमान दूर किया जाये। उन दिनों महात्मा गान्धीके काम-काजमें कौन्सिलका बहिष्कार स्कूलका त्याग अदालत अन्य आदिका आन्दोलन शामिल था। किन्तु गान्धीजीकी विरोध तो दूर कलकत्तेसे लौटते न लौटते लोगोंमें अपनी कौन्सिलके बहिष्कारकी घोषणाओंसे धूम मचा दी और बम्बई प्रान्तमें सबसे पहले कौन्सिल छोड़नेवालोंमें स्वर्गीय बैरिस्टर बैप्टिस्टा और लोकमान्यके परम शिष्य स्वर्गीय नरसिंह चिन्तामणि केलकरजी थे। उस समय यद्यपि जिनके हाथमें कांग्रेस थी उन पदाधिकारियोंकी नीयत तो यह थी कि कांग्रेस महात्मा गान्धीके असहयोगिता आन्दोलनके खिलाफ जा रहे किन्तु वस्तुतः वह

भिखारियोंके झुण्डके बाहर थे और जनता खुले आम असहयोग आन्दोलनसे हर्षित हो रही थी।

नागपुर कांग्रेसमें मैं उसी मकानमें ठहरा हुआ था जिसके ऊपरके हिस्सेमें बापूजी ठहरे हुए थे। उस समय सम्पूर्ण भारतीय जीवनमें एक हलचल प्रारम्भ हो गयी थी। १९०८ में जब नागपुरमें लोग किसी राजनीतिक परिषद्में एकत्र हुए थे तब भोजनालयकी तरफ ध्यान देनेसे मालूम होता था कि ब्राह्मण-अब्राह्मणवादका कितना बड़ा जोर है। जब भोजन तैयार हुआ तो जो लोग धोती नहीं पहने हुए थे उन्हें अछूतोंकी तरह दूर बैठाकर भोजन परोसा जा रहा था। जब १९१५ में लोकमान्य छूटकर आये उसके पूर्व स्वर्गीय बिम्बरस् मुधलके सभापतित्वमें जो अखिल भारतीय राजनीतिक परिषद् नागपुरमें हुई उसमें धोती पहनने और बिना धोती पहननेवालोंकी पंक्तियाँ आमने-सामने बैठीं किन्तु जब नागपुरकी कांग्रेस हुई तब गान्धीजीके युगका यह प्रभाव था कि भोजनकी वस्तुओंमें श्रेष्ठता आ गयी थी और मनुष्य मात्र भोजनमें सम्मिलित था। गान्धीजीके युगकी अहिंसक असहकारिताके जमानेकी यह पहली कांग्रेस थी जिसमें कर्नल वेजवुड और मेजर एटली (जो आगे चलकर इंग्लैण्डके मजदूर प्रधान मन्त्री हुए तथा जिनके जमानेमें भारतवर्षको स्वराज्य प्राप्त हुआ) भी कांग्रेस देखनेके लिए प्रथम बार कांग्रेसमें सम्मिलित हुए थे। मैंने देखा स्वर्गीय भाई जमनालालजी बजाज जो नागपुर कांग्रेसकी स्वागत-समितिके अध्यक्ष भी थे कांग्रेसको सफल बनानेके लिए बहुत चिन्तित थे और महात्मा गान्धी माना देशकी परम शक्तिपर विश्वास करके अत्यन्त निश्चिन्त थे। श्री उस जमानेमें मध्यप्रदेशकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी सम्पूर्ण शक्ति इस बातमें लगी हुई थी कि असहयोगका प्रस्ताव कांग्रेसमें हार जाये किन्तु असहयोगके पक्षमें देश-भरमें हल्ला मचा हुआ था और लोक-जीवनमें ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वराज्य नजदीक दौड़ता चला आ रहा है। यद्यपि महात्मा गान्धी बार-बार उपदेश कर रहे थे कि बिना सोचे-विचारे

असहयोगके प्रस्तावका साथ न दो किन्तु लोग तो गान्धीजीके प्रस्तावपर मत देनेके लिए उतावले हो रहे थे।

एक दिन सन्ध्याके समय अपने नागपुरके निवास भवनमें गान्धीजीने सब कांग्रेस कार्यकर्ताओंको बुलाया और कहा कि मेरे कानोंपर खबर आयी है कि आप लोगों (गान्धीजी उस समय लोगको 'लोक' ही उच्चारण करते थे) यूं तो अहिंसाका मतलब समझाते हैं उसमें लोग तालियाँ खूब बजाते हैं मगर उसमें ज़हर तो होता है। मुझे हिंसाका स्वराज्य तो नहीं चाहिए और अगर हिन्दुस्तानके लोग हिंसाके बिना स्वराज्य नहीं चाहते तो मैं तो लोगोंको यूं छोड़कर बाहर निकल जाऊँगा। इसलिए अब आप लोग अपने भाषणोंमें-से ज़हर निकाल डालिए। गान्धीजीके इतना कहते ही 'हम कांग्रेसके महान् नेता गण' एक-दूसरेकी सूरतें देखने लगे। उस समय स्वर्गीय विजयसिंहजी पथिकने स्पष्ट सन्तोष कहा यदि हम गान्धीजीको ग्रहण करना चाहते हैं तो समूचा ही ग्रहण करें—ईमान पुराना और योजना नयी इस जोड़से तो काम नहीं चलेगा। इसके पश्चात् थोड़ा-सा परिवर्तन तो वक्ताओंने अपने भाषणमें किया किन्तु उनके मनसे यह भय नहीं निकला कि युद्धको भाषाको अहिंसक रूप देनेसे कहीं पूरा आन्दोलन न बैठ जाय। किन्तु नागपुर कांग्रेसके थोड़े ही दिन बाद बालाघाट जिलेमें काम करनेवाले एक बाहरी प्रान्तके सज्जनने जब अपने भाषणों-के लिए वहाँके जिला मजिस्ट्रेटके सामने क्षमा माँग ली तब गान्धीजीने कार्यकर्ताओंसे चर्चामें स्पष्ट कहा "वह आदमी हमारे कामसे तो गया। अब हमारे यूं उसकी तरफ नहीं देखना चाहिए और इस बातका ख्याल रखना चाहिए कि स्वराज्यके काममें संकट तो आयेंगे। इसमें तो वो ही लोग पड़ें जो संकट सह सकते हैं जो नहीं सह सकते उनका इस आन्दोलनमें कुछ काम नहीं।"

०

१९२० में अजमेरके देशभक्त श्री अर्जुनलाल सेठी बालाघाट जेलसे छूटे। यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो इन्दौरके कल्याणमल हाई स्कूलके आरम्भसे लेकर १९१३ तक वे उसके प्रधानाध्यापक थे। इस तरह कल्याणमल हाई स्कूलको यह गौरव प्राप्त है कि कठिनाईके उन दिनों जब देशभक्त सेठीजी जैसे व्यक्तिका ब्रिटिश भारतमें भी स्वतन्त्र रहना कठिन था वे एकदेशीय रियासतमें नये हाई स्कूलके हेडमास्टर होकर आये। फिर उनके क्रान्तिकारी होनेके सन्देहपर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और लगभग सात वर्ष बिना मुकदमा चलाये जयपुर और वेलोर (मद्रास प्रान्त) की जेलोंमें रखा गया। सेठीजी गीताके परम उपासक तथा जैन-धर्मके उच्च उदाहरण थे।

एक बार उन्हें जेलमें ५२ दिनका उपवास करना पड़ा; वे भोजन तभी करते थे जब अपने इष्ट देवकी मूर्तिके दर्शन कर लेते। ५२ दिन बाद जब प्रभु-प्रतिमा उनके सामने लायी गयी और उन्होंने दर्शन कर लिये तब जाकर भोजन किया। जब सेठीजी बालाघाट जेलसे छूटे तो उनके जेल-जीवनकी एक प्रश्नोत्तरी २८ फरवरी १९२० के कर्मवीर में छपी। उस समय महात्माजी-द्वारा सम्पादित गुजराती 'नवजीवन' तथा अंग्रेजी 'यंग इण्डिया' नये-नये ही प्रकाशित हुए थे और सेठीजीकी इस मुलाकातका अनुवाद गुजराती 'नवजीवन में प्रकाशित हुआ था।

एक बार मैं बापूके साथ वर्धासे बम्बईकी यात्रा कर रहा था। तीसरे दरजेमें यात्रा हो रही थी। हम लोगोंकी कोशिश यह रहती कि रेलका डिब्बा बापूको खाली मिले अतः उससे बहुत पहले स्टेशनपर पहुँचकर विविध प्रकारसे डब्बे खाली करनेका प्रयत्न करते और महात्माजीका नाम

सुनकर उस डिब्बेके मुसाफ़िर दूसरे डिब्बेमें बैठनेको चले जाते। मुझे याद आता है कि उस समय मणिलाल भाई (गान्धीजीके पुत्र नहीं) हम लोगोंके साथ थे किन्तु ज्यों ही बापू रेलके डिब्बेमें आये डिब्बेमें मुसाफिरों-को न देखकर वे एक दम उदास हो गये और बोले यहाँके मुसाफ़िर क्या हुए? तब मैं मणिलाल भाईकी तरफ देखूँ और मणिलाल भाई मेरी तरफ़। अन्तमें बहुत डरते-डरते हम लोगोंने स्वीकार किया कि मुसाफ़िर हमारी प्रार्थनापर दूसरे डिब्बेमें बैठने चले गये। बापू बोले 'क्यों नहीं चले जायेंगे। पुलिस डराती है फ़ौज डराती है सरकारी अधिकारी डराता है अंग्रेज़ डराता है अब क्या गान्धीजीके डरसे रेलके मुसाफ़िर दूर भगाये जायेंगे? और मणिलाल भाईकी ओर मुख़ातिब होकर उन्होंने कहा 'तमे तो हवे आपणा कार्यनो आधार ज बगाड़वा मांगो छो" बापूने गुजरातीमें बहुत लम्बा कहा था किन्तु मेरी डायरीमें मैंने पूरे शब्दोंको उस समय नहीं लिखा था। अन्तमें बापू धीरेसे उठकर रेलके दूसरे मुसाफ़िरोंसे भरे थर्ड क्लासके डिब्बेमें बैठ गये और उनसे काम-काजकी बात करने लगे। वहाँ हम लोगोंने देखा कि बापू अपनी बात रेलके मुसाफिरोंसे इतनी तल्लीनतासे कर रहे हैं मानो रेलके डिब्बेमें कई दिनों पहले आकर बैठे हों। मणिलाल भाईने मुझसे कहा हम तो केवल बापूके स्वास्थ्यकी चिन्ता है, किन्तु बापू भारतवर्षके जीवनसे घुल-मिल जाना चाहते हैं।

एक बारकी बात है कि बापू भोपाल गये। वे बम्बईसे भोपाल जा रहे थे। भोपालमें 'कर्मवीर' बन्द था और मेरा प्रवास निषेध था। इस बार भाई जमनालालजी बजाजने मुझे सूचना दी थी और मैं छिपकर उनके साथ हो गया। बापूकी इस भोपाल-यात्राकी व्यवस्था प्रसिद्ध देशभक्त स्वर्गीय डॉक्टर अन्सारी साहबने की थी। डॉक्टर अन्सारी साहब भोपालमें उस समय हाज़िर भी थे। बापू भोपालके नवाब साहबके राहत-मंज़िल नामक भवनमें ठहराये गये थे। ज्यों ही सन्ध्याका समय हुआ आप प्रार्थना करने बैठ गये उसमें भोपालके नवाब साहब डॉक्टर अन्सारी

महोदय और भोपालके रियासतके बड़े-बड़े अमीर-उमराव घुटने टेके वहाँकी प्रार्थना सुन रहे थे। बापू ध्यानस्थ प्रार्थनामें लीन थे। गीताके कुरान शरीफके बाइबिलके और सन्तोंकी वाणियोंसे प्रार्थनाके शब्द गूँज रहे थे। उस दिन उस प्रार्थना-सभामें मालिक या नौकर राजा या प्रजा गरीब या अमीर छोटा या बड़ा सब भेद जाने कहाँ विलीन हो गये थे। उस समय साम्प्रदायिक भेद मानो कोई चीज ही नहीं दीख पड़ता था।

जिन दिनों बापू १९३३ में हरिजन दौरेपर निकले तब स्वर्गीय पण्डित रविशंकरजी शुक्ल उनके दौरेमें उनके साथ ही गये। क्योंकि दौरा महाकोशलसे शुरू ही हुआ था मैं बैतूलके मित्रोंको लेकर छिन्दवाड़ा पहुँच गया। उसी दिन बापू सिवनी जा चुके थे और छिन्दवाड़ा आनेवाले थे। बैतूलके श्री भाई दीपचन्दजी गोठीकी सूचनाके अनुसार मुझे लगा कि बापूको छिन्दवाड़ा शीघ्र आना चाहिए और दिन-ही-दिनमें अर्थात् दिन रहते ही सतपुड़ाके सर्पाकार मोड़ों और घाटियोंसे कमसे-कम मुलताई तक निकल जाना चाहिए। उस समय मैं छिन्दवाड़ामें देशभक्त श्री घाल-पेकरजीके घर ठहरा हुआ था। मैंने तुरन्त एक तार सिवनी दिया 'कान्वायकी क्रॉस सतपुड़ा टर्निंग्ज एण्ड घाट्स बिफोर सन सेट" और दो घण्टे बाद हम लोगोंने देखा कि पूज्य बापूजी और उनके साथकी मोटरें छिन्दवाड़ामें थीं। छिन्दवाड़ाका काम शीघ्रतासे निपटाया गया और बापूकी मोटर आगे मुलताईकी ओर चल पड़ी। कभी-कभी तो उनकी मोटरकी रफ्तार चालीस मील फी घण्टा भी हो जाती थी कि जिससे न हम उनकी मोटरके आगे उचित फ़ासलेसे रह सकते थे और न उस मोटरके पीछे ही उचित फ़ासला कर सकते थे। मुझे 'पायलटिंग' है अतः मैं अग्रगामी होकर काम कैसे आगा कर रहा था और पूज्य बापूकी मोटरमें नहीं बैठा था। बापूकी मोटरमें श्री दीपचन्दजी गोठी बैठा दिये गये थे कि वे रास्ता बताते चलें। किन्तु मोटरकी दौड़ तेज़ हो जाती थी तब मैं देखता था कि उन देहात-ग्रामोंके निवासियोंके झुण्डके-झुण्ड गीत गाते हुए बापूको रोक लेते थे।

और समयका कठोरतासे पालन करते हुए भी थके हुए बापू उत्साह पूर्वक ग्रामीणोंको हरिजनोंके उद्धारका सन्देश सुनाते जाते थे। छिन्दवाड़ासे मुल्ताई जाते हुए भी जगह जगह ग्रामीणोंने बापूकी मोटर रोकी थी। ग्रामीण लोग प्रायः उन्हीं गीतोंको गाते थे जिन गीतोंको वे उस समय गाया करते थे जब उनका कोई पारिवारिक तीर्थ-यात्रासे लौटता था। किन्तु एक ग्रामके ग्रामीणोंको मैंने यह गीत गाते सुना जब भगवान् रामचन्द्रजी चौदह वर्षका वनवास काटकर अयोध्यामें लौटे थे।

बापू जब मुल्ताई पहुँचे तब सन्ध्या हो चुकी थी। वहाँ जो हरिजन-प्रेमी सभा हो रही थी उसका नियन्त्रण देशभक्त श्रीयुत् बिहारीलालजी पटेलकी धर्मपत्नी अर्थात् मेरे मित्र गुरुदयाल बापूकी पूर्ती कर रही थी। बापू उनकी व्यवस्था चतुराईसे बहुत प्रसन्न हुए थे।

बैतूलमें रात बितानेके पश्चात् बापूकी यह इच्छा हुई कि वे मद्रासके थियोसॉफिकल कॉलेजके प्रिंसिपल और आपके परम प्रिय मिस्टर डंकन जो उन दिनों एक वर्षके लिए सतपुड़ाके जंगलोंमें आकर रहे थे को देखें। बापू पहले मुबेदार माइकके गाँव बोड़ीमें अपनी प्रसिद्ध अंग्रेज शिष्या मिस मेरी बारसे मिले जिन्होंने भारतीय ग्रामोंकी सेवाके लिए बापूकी आज्ञाके अनुसार अपना जीवन लगा दिया और तब वहाँसे हम लोग गान्धीजीके साथ उस स्थानपर गये जहाँ 'डंकन महाशय रहते थे।

हम लोग एक लम्बा-सा घुमाव लेकर ताप्ती नदीके उस भयंकर मोड़ पर पहुँचे जहाँ अपनी धारमें सौन्दर्य बहुत निश्चिन्त भावसे बैठा हुआ था बापूने जब यह स्थान देखा तो उनके मुँहसे निकल पड़ा 'स्विट्ज़रलैण्ड इससे सुन्दर क्या हो सकता है' और क्योंकि मंगलदासभाईकी कलमें ... गयी। उस गाँवका नाम 'बारहलिंग' था वहाँ भी डंकन रहते थे। ... ताप्ती नदीके कगारमें बारह शिवमन्दिर थे जिनके कारण उस गाँवका नाम बारहलिंग पड़ा था। बापूको कुरसीपर बैठाकर ऊपर चढ़ाया गया एक लम्बी घाटी चढ़नेके बाद सबके शिखरपर बारहलिंगमें पहुँचे।

घूमकर देखनेसे बारहलिंगके मन्दिर और ताप्तीका जल-प्रपात दोनों स्पष्ट दिखायी दे रहे थे और सौन्दर्य तो मानो सन् १९३३ के नवम्बरके इस सप्ताहमें सतपुड़ाकी घाटियों और झाड़ियोंपर टूटकर बिखर रहा था। वायुका जो भी झोंका आता काफी ठण्डा होता किन्तु सौन्दर्यमय वृक्षराजिके पत्र हिल-हिलकर मानो चमत्कार बना उठते थे। पहाड़के शिखरपर चढ़ने के बाद हम चिन्तामें पड़े कि यहाँ पानी कहाँसे आता होगा? किन्तु उस पर्वत शिखरपर तो एक कुआँ और उसमें काफी पानी और मालगुजार साहबका एक बगीचा जिसमें केले तथा कई प्रकारके वृक्ष लगे हुए थे। बापूने पूछा 'डंकन कहाँ है? तब उन्हें बताया गया कि इस सतपुड़ा शिखरके पश्चात् यह जो दूसरा ऊँचा शिखर दिखायी देता है जहाँ इतनी ही और इससे भी कठिन चढ़ाई है उस शिखरके ऊपर अत्यन्त अकेलेमें डंकन महाशय रहते हैं। बापू खिलखिलाकर हँस पड़े और बोले क्या वहाँ जंगली जानवर नहीं आते? उस समय यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो श्री बिहारीलालजी पटेलने कहा था कभी-कभी आते हैं बाघभालुओंका और जंगली जानवरोंका तो नित्यका परिचय है किन्तु वे छेड़ते नहीं हैं। इस तरहकी भिन्न-भिन्न चर्चा होते हुए, हम लोग बापूके साथ सतपुड़ाके शिखरपर चढ़ रहे थे। और ताप्ती नदीकी छोटी-छोटी लहरें मानो नीचेसे बहुत गर्वित देख रही थीं। हम लोग मिस्टर डंकनके यहाँ पहुँचे उसके पहले महात्माजी पहुँच गये थे। हम लोगोंको ऊपर चढ़नेमें जरा देर हो गयी थी। महात्माजी मिस्टर डंकनसे बात करनेमें इतने तल्लीन थे कि किसीका उस समय बातचीतमें हिस्सा लेना बहुत कठिन था। लौटते समय जब ताप्तीसे हम लोगोंने विदा ली लगा कि ऐसा सुन्दर स्थान जीवनमें फिर देखनेको शायद नहीं मिलेगा और यह चमत्कार तो अभूतपूर्व होगा कि भारतवर्षकी इच्छाकी अकस्मात् खेत ताप्तीके किनारे बारहलिंगम लहलहाये और उसमें महात्मा गान्धीके आगमनका पुण्य फल उठे।

बैतूलसे बापू इटारसी आये। बैतूलके स्टेशनपर होशंगाबाद जिलेके कार्य

नामक स्थानके मित्रोंने बापूसे आग्रह किया कि वे अपने हरिजन दौरेमें खाईको भी रखें। किन्तु पूज्य ठक्कर बापाने मैंने डॉक्टर बसन्तोबरने और स्वर्गीय पण्डित रविशंकरजी शुक्लने खाईवालोंको सर्वथा निराश कर दिया और कह दिया कि बापू खाई नहीं जायेंगे। इटारसी पहुँचकर बापू, मिर्धीलालजी दीपचन्दजी पोद्दारकी धर्मशालामें ठहरे। वहाँ प्रातः उठकर बापूने मुझसे पूछा "माखनलालजी खाई यहाँसे कितनी दूर है ?

मैं चौदह और दस चौबीस मील।

प्रश्न 'वहाँकी आबादी कितनी बड़ी है ?

उत्तर 'वहाँकी आबादी लगभग तीन हजारसे कम ही होगी। शनिवार और मंगलवारको वहाँ बाजार लगते हैं।

प्रश्न 'तुम मेरे खाई जानका विरोध क्यों करते हो ?"

उत्तर 'यहाँसे होशंगाबाद पहुँचनेके पश्चात् वहाँसे कुछ मील जाकर तवा नदी पड़ती है। उसपर पुल नहीं बना है। नदीको पैदल ही पार करना होता है। कभी घुटने भर और कभी कमर-भर पानी वहाँ रहता है। वहाँ पुल हर साल बनता है किन्तु अभी बनकर तैयार नहीं हुआ होगा। बापूने आज्ञा दी कि आप जाइए और देखकर आइए कि पुल बना या नहीं। मैं एक मोटर लेकर तवा नदी गया। पुल बन रहा था। उसपर चलकर देखा वह बना नहीं था। मैं लौट आया और बापूसे कह दिया कि तवाका पुल अभी बना नहीं है आप खाई नहीं जा सकते। होशंगाबाद जिलेका यह खाई गाँव मेरी जन्मभूमि है, इसीलिए वहाँसे आये हुए मित्रोंको इस बातका दुःख हुआ कि बापूको खाई ले जानेके बजाय मैंने तवाका पुल न बननेकी रिपोर्ट दी। बापू इटारसीसे बीना होते हुए सागर चले गये वहाँसे जबलपुर। मैं अकेला लौट आया। तीन-चार दिन बाद मुझे तार मिला कि बापू मुहासपुर होकर खाई जा रहे हैं और मैं तुरन्त उन्हें मुहासपुरमें मिलूँ। मैंने तुरन्त रेल पकड़ी और गाडरवाड़ा पहुँच गया। गाडरवाड़ामें मेल ट्रेनसे मैं बापूके साथ लौटकर मुहासपुर

था गया। मैं इस बातसे अत्यन्त दुःखी था कि बाबई ले जाकर बापूके साथ अन्याय किया जा रहा है। उसके तीन कारण थे

१ बाबईसे हरिजन-कार्यमें कोई बड़ी सहायताकी आशा नहीं थी।

२ बाबई-जैसे सब स्थानोंमें बापूको देश-भरमें नहीं ले जाया जा सकता था। बाबई-जैसे छोटे स्थानोंको छोड़कर ही बापूका दौरा चलाया जा सकता था।

३ बाबईमें हरिजनोंकी ऐसी कोई सम्पूर्ण देशका ध्यान खींचनेवाली उलझी हुई समस्या नहीं थी कि वहाँ बापूका जाना अनिवार्य हो।

शाम ही बापू नियमसे नौ-दस बजेके लगभग सो जाते थे। यह क्रम इस यात्रामें बिलकुल नहीं चल सकता था। सुहागपुरपर उतरकर ठहरने के स्थानपर थोड़ा रुकनेके बाद बापूने सुहागपुरकी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया और रातको बाबईके लिए रवाना हुए। उस समय मोटरमें मैं बापूके पास ही बैठा था। मैंने अचम्भेसे देखा कि महात्मा गान्धी मोटर रवाना होते ही हाथ-पैर सिकोड़कर मोटरमें सो गये और बाद निद्राका स्वर भी सुनायी पड़ने लगा। मैं मन-ही-मन सोचता जाता था कि बाबई ले जाकर लोग बापूको निरर्थक कष्ट दे रहे हैं। जब बाबईके स्कूलके पास मोटर बस्तीमें प्रवेश करनेके लिए दौड़ी तब उन पच्चीस मिनिटोंमें ही बापू ऐसे जाग गये मानो वे सोये ही नहीं और जब वहाँकी सभामें बापूजीने भाषण दिया तब तो मैं मानो दंग-सा गया। वह भाषण समाचारपत्रोंमें इस तरह छापा था

'भाइयो और बहनो

मैं तारीख १ को जब इटारसी आया तब लोगोंने मुझसे सड़कके बारेमें कहा कि रास्ता खराब है। खराब रास्ता सुनकर मेरा शरीर कमजोर होनेसे बाबई आनेका प्रोग्राम खतम किया। खतम तो किया मगर मेरा मन नहीं जमा हुआ था। मुझे इरादा बदलनेकी दिलगीरी थी। भाई माखन-लालकी जन्मभूमि होते हुए भी उन्होंने मेरे शरीरकी हालत जानकर ही मुझे रोका किन्तु उनकी जन्मभूमि और आप लोगोंके स्वागतको देखनेकी

मेरा मन तो बारडोलीमें लगा था। मुझे डॉक्टरोंने मना किया दोस्तोंने भी समझाया, परन्तु उनका कहना न मानते हुए मैं यहाँ आया। यह बात तो आप जान लें कि मैं यहाँ पैसा लेने नहीं आया। मैं तो आप भाइयोंके प्रेमके कारण आया हूँ। पैसा तो मैं देश भरमें-से थोड़ा-थोड़ा इकट्ठा कर लूँगा। भाई प्यारेलाल मुझसे आग्रह किया कि मुझे बारडोली जाना चाहिए। हरिजनोंका काम करनेवाले भाई जान लें कि कष्टोंमें भी हमें तो शान्ति अहिंसा और नम्रताका ही पालन करना है। आपने अपने मानपत्रमें मन्दिर न खुलनेपर दुःख प्रकट किया है परन्तु मुझे डर नहीं है। मन्दिर तो समय आनेपर खुल जायेंगे किन्तु अभी तो हमें लोगोंमें-से छुआछूतको मिटाना है। मैं तो मानता हूँ कि यदि हिन्दुओंमें-से छुआछूतका कलंक दूर न होगा तो हमारा नाश हो जायेगा। अगर हरिजन मन्दिरमें नहीं आते तो याद रखो कि उस मन्दिरमें भगवान्‌का वास नहीं है---।

रातमें साढ़े नौ बजे सरदार दुर्लभसिंहकी मोटरमें महात्माजी मुहामपुर लौट आये। जब हम बज वहाँ पहुँचे तो कप्तान सरदार दर्लभसिंहको धन्यवाद देते हुए कहा कि मुझे बारह बजे रातको लौटनेका अन्देशा बताया गया था। किन्तु आपने तो मुझे दस बजे रातको ही लौटा दिया।

जिन दिनों महात्मा गान्धीने नमक सत्याग्रह छेड़ा था उस समय मैं तारीख २२ मार्च सन् १९१ को भडौच पहुँच गया और डॉक्टर चन्दुलालके साथ वहाँका गान्धी सेवाश्रम देखा। महात्माजीकी डांडी-यात्राके बारह सिपाही वहाँ सुश्रूषा ले रहे थे। मेरे साथ उस समय स्वर्गीय बाबा साहब नीलकण्ठराव देशमुख और जबलपुरके भी कार्यकर्ता थे। बाबा साहब जम्बूसर गाँवमें महात्माजीसे मिलकर लौट आये थे। मैं भडौचसे समनी गाँव चला गया 'भुआ' नामक ग्राममें महात्माजी और नमक सत्याग्रहियोंकी टोली रात आ रही थी। समनी आकर मैंने देखा कि गुजरातके गाँवोंमें नमक सत्याग्रही बापूके स्वागतके लिए समनी गाँवका आ रहे हैं। समनी गाँवकी आबादी उस समय नौ-सौ [illegible] थी। वह बहुत छोटा-सा गाँव है।

किन्तु आस-पासके गाँवोंसे गुजराती किसानोंके झुण्डके-झुण्ड बापूके दर्शनके लिए एकत्रित हो रहे थे। विशेषता यह कि उनमें-से शायद पचासने प्रतिपदाके अनशन तो पैदल ही मीलोंका प्रवास करके आये थे। गुजराती किसानका वचन मैंने वहीं उसी समय लिया। उनकी पीठपर एक झोला होता जिसमें एक लोटा एक धोती और खानेके लिए ढोकिया नामक गुजरातका बना पदार्थ होता। शामको साढ़े पाँच बजे मैं गुजराती किसानोंसे बात करता हुआ हुआ गाँवसे सभी आनेके लिए उत्सेम पढ़नेवाले केरंवाड़ा और सूखी गाँवोंकी ओर चला। पीतोम लोगोंने पानी सींच रखा था। विजयके लिए रखो थी हाथ-कते सूतकी मालाएँ तैयार थी। उस समय मुझे गुजरातके गाँवोंमें बापूके दर्शनार्थ उत्सेम दस-दस पाँच-पाँचकी टोलीमें गुजराती किसान पुरुष और स्त्रियाँ साथ चलते दीखे। अँधेरा होनेपर किरासन लैम्पोंकी कतार अनेक रेलवे स्टेशनोंका भ्रम पैदा कर रही थी। जिस टोलीको समझाइए कि बापू आते ही होंगे मत जाओ उनके उत्तरोंके वाक्योंको सुनिए

'हमारा बापू दुबला-पतला है, कहीं वह बीमार नहीं हो गया हो। कहीं उसे कंकड़-पत्थरोंमें चोट नहीं आ गयी हो। कहीं काँटा लगनेसे वह उत्सेम ही बैठ न गए हों।

शायद इस पापी सरकारने उन्हें दुबारा पकड़े समय ही गिरफ्तार कर लिया हो।

उस समय वहाँ दो ही रस विद्यमान थे। नक्शा शान्त रस और दूसरी बेचैनीका करुण रस कि इतने ही में दूरपर एक लालटेन दिखायी पड़ी और गुजराती किसान नर-नारी जोरसे चिल्ला उठे। 'बापू आवे छे बापानी बेज्यो'। लोग इतने बेचैन कि दूरकी लालटेनको देखनेके लिए पासकी झाड़ीपर चढ़ गये सो भी अपनी-अपनी लालटेन लेकर मानो बापूके आगमनपर लालटेनोंके रूपमें जुगनोंने प्रकाशके फल फले हों। ठहरनेकी बात सहन न करनेमें नरसेना मानो वानरसेना बन गयी थी और सेनाके राम-धुनका दौड़धाम बैठ गयी थी। जरा उन किसानोंकी बातें सुनिए,

'भाई, तूने बापूको देखा है?'

हाँ रे!"

'फिर तुम लोगोंने अमृतसरसे इतनी पैदल यात्रा करनेके लिए बापूको रोका नहीं?'

साथ चलते दूसरे किसानने अपनी पाग सम्हाली और बोला, 'बापूको कौन रोक सकता है? वह तो नर्मदाकी धार है।'

एक किसान भी इन बातोंको सुन रहा था, बोला, 'बापू बसालपुर क्यों जाते हैं? यहीं मेरे गाँवके पास तो बहुत नमक बनता है, यहीं बनावें। मेरे गाँवके लोग तो बापूके आते ही 'मीठू' नमक बनाने लगेंगे।'

एक किसान उत्साहमें कह उठा, 'हमें आशा यदि पार पड़ जाने हम जेलोंमें पड़ जायेंगे और बापूसे कहेंगे कि तुम अकेले नहीं लोगे, तुम्हारी आज्ञासे सारी गुजरात जेल जानेके लिए प्रस्तुत है', कि एक आवाज आयी "आगया आवी गया" और दूसरेने आवाज लगायी, 'बापू आव छे, बपाने जेजो।'

एक महिला सड़कपर चलकर बैठे हुए पुरुषोंको फटकारकर बोली, 'सामन्याने आवान पु बैठवान का छो?' मतलब यह कि गुजर भाइयोंकी बहु-म्हारा अपने लाल्टेनोंका रंग लिये दीवाली-सी सजाती चल पड़ी। ज्यों ही बापू और उनकी टोली पास आयी, गुजर किसानोंकी बातचीत बन्द हो गयी, मानो मौन और संयमका रूप बनकर वे नमक सत्याग्रहियोंके साथ चलने लगे। आगे-आगे गुजरातकी किसान महिलाएँ बापू और सत्याग्रहियोंका गुणगान अपने गीतोंमें करते हुए चल रही थीं। मेरा मन मुझसे पूछ रहा था, इन बिलकुल सादे गीतोंको गाँवोंकी भाषामें इतने ओज कौन भर गया? फिर मनने ही उत्तर दिया, 'ये भगवान् बापूकी कड़ियाँ हैं, जो किसी साहित्यिक या किसी रचना-कौशलके लिए नहीं उतरतीं। यह साहित्य नहीं जनम बोल रहा है।'

मुक्तिके सन्तोंके लिए यात्री बहुत थी, कोई मोल उसको किन्तु

बापू अपने सत्याग्रहियोंको लेकर ऊबड़खाबड़ कच्ची सड़कसे जाते थे। गरमी जमीनमें पड़ी दरारें और काँटे उस सड़कमें सब कुछ था। यह मालूम हुआ था कि गुजराती किसान नर-नारी दिन भर उस सड़कके काँटे चुनकर दूर फेंक दिया करते थे जिस सड़कसे बापू जाते थे। बापू उसमें चलकर जाते थे। सिरमें खादीका एक सफेद टुकड़ा बँधा था। घुटनों तक खादीकी एक धोती पहने हुए थे उनके एक हाथमें लाठी थी दूसरा हाथ एक स्वयंसेवकके कंधेपर रखा हुआ था। बदन झुका था। धीमी-धीमी ध्वनिमें सारी सेना कह रही थी

रघुपति राघव राजा राम
पतितपावन सीता राम।

मानो यह नमक सत्याग्रहके युद्धमें राम-वाहिनीका शोभायमान था। बापू उसनी गाँवकी धर्मशालामें ठहराये गये थे। बिस्तरेको लपेटकर बनाये गये एक तकियेसे वे टिके थे और आते ही उनकी टाँगकी मालिश की जा रही थी। उस समय कुछ पत्रोंको बापू खुद पढ़ रहे थे और कुछको उन्हें पढ़कर सुनाया जा रहा था। उनके पाँवोंमें काँटे नहीं चुभे थे किन्तु पाँवके पासके खेतके कुछ ठूँठ गड़ गये थे। उसी समय थके हुए बापू विश्राम करनेकी बजाय तेलकी मालिश पूरी होते ही सभा-स्थानमें जानेके लिए उद्यत हो गये परन्तु इसके पहले वे इस बातकी सावधानी ले रहे थे कि बाहरके जो लोग उसनी गाँवमें आ गये हैं उनके खान-पीन और रहनेकी व्यवस्था समुचित है या नहीं। उस सभामें उन्याबी पुलिस-पटेलोंने इस्तीफे दिये थे। बम्बईका उन दिनोंका अंगरेज सम्पादित टाइम्स ऑफ इण्डिया उन दिनों लिख रहा था कि नेताओंकी जबरदस्तीसे पुलिस-पटेल इस्तीफा दे रहे हैं। महात्माजीने लोगोंको तमाम गुजरातीमें कहा जिसका आशय था कि आपमें-से कोई भाई जबरदस्ती पुलिस-पटेलीसे इस्तीफा न दे और जिनने ऐसी जबरदस्तीसे इस्तीफा दिया हो वे अपना इस्तीफा वापस ले लें। पुलिस पटेलोंसे अपना इस्तीफा वापस लेनेके लिए मैं आपसे कहनेका समय

उस समय पुलिसका हर हवलदार नमक अफसर बना दिया गया था जिससे वह सत्याग्रहियोंको गिरफ्तार कर सके। कहीं खबर मिली कि कमालपुरके आस-पासकी जमीन खोदकर वहाँका नमक नष्ट किया जा रहा था जिससे गान्धीजी तथा सत्याग्रही वहाँ नमक न बना सकें। थोड़ा दिनकी पुलिसने मोटर-गाड़ियोंके ड्राइवरोंको सूचित किया था कि गान्धीजीके पास आनेवालोंको नहीं ले जावें। गान्धीजीसे मिलने जानेवाले साथियोंको रोकनेके लिए बेनारमें गुजराती किसानोंका पकड़ा गया और जो लोग न रोक सके उन्हें कह दिया गया। विभिन्न पुलिसके अफसरों (Inspectors) को यह हुक्म दिया गया कि शुद्ध खद्दरके कपड़े पहनकर लोगोंको गान्धीजीके प्रभावमें आनेसे रोकनेका प्रयत्न किया जावे। मैंने उस समय उस विभाग की हरकतें और भी लोगोंसे बातें की और तब हाल-चाल पूछा। फिर बापूजीका बुलावा आया जहाँ वे यह बताते रहे 'नमक सत्याग्रहमें ग्रामोंमें किस तरह काम हो। लोग कितनी शक्तिसे इस कामको करें। आपलोग गरमी न हों किन्तु क्रियामें बराबर हों। लोग सोच-समझकर कामको हाथमें लें। कार्यकी कठिनाइयोंसे लोगोंको पहले ही आगाह कर दिया जावे और सत्याग्रहियोंकी संख्या बढ़ानेका हमारी ओरसे बिलकुल प्रयत्न न हो। हाँ अपने मनसे ही लोग इसमें शामिल हों और सब तरहके खतरे उठानेको तैयार हों तो दूसरी बात है।"

सारी बातोंसे मुझे लगा कि महात्माजी दृढ़-संकल्प और सत्य शक्तिके महान् सन्देश-वाहक हैं। ब्रिटिश-विरोध उनके कार्यक्रमका अंग नहीं है। क्षमाशील और सौजन्यपूर्ण उनका विश्वास है। शत्रुके प्रति ऐसी कोई भावना उनके पास नहीं है। ब्रिटिश सरकार यहाँ स्थापित है इसलिए वह अपनेको विरोधी भले ही माने किन्तु इस महापुरुषके कार्य करते समय जो भी सरकार सामने होती उसी तरह विरोध होता। मानो महात्माजी देश भक्ति और ब्रिटिश-विरोध इन दोनोंके बीचकी बातोंसे पूर्ण अवगत थे।

महात्मा गान्धी ऐसी ध्वनि दे या लोकजीवनके कष्टोंका पुनः बनाती

और फेंककर डोरा बनकर उनके कोटि-कोटि भिक्षुकका भोग सामग्री। जिसने धीमे वे सोचते थे किन्तु उस व्यक्तिकी छिपने चोरकी आवाज लोगोंके हृदयसे गूंजती उठती थी। महात्माजीके दोनों हाथ चलते थे एक हाथ मानो अपने देशका भाग्य लिखता था दूसरा हाथ मानवीजन गुलामोंको उठाता था जिसमें उठनेका दम न होता था। जैसे आश्रममें रहते थे वह मानो देशकी सांस आनेका मन्त्र हो वह स्थान गरीबोंकी आवाज राज महलसे टकरानेका द्वार था। गलियोंमें कूचोंमें झोंपड़ियोंमें महलोंमें पहाड़ोंमें गुफाओंमें मीनारों, एकान्तोंमें शिखरोंमें मरघटोंमें साहित्य भले ही चुप रहे किन्तु देवालय बोल रहा था चलो आगे बढ़ो। मानो जीवन साम्राज्यवादी देशमें जीनेका जीवन बढ़ाव और आगेके जीवनका उतार हो। शरीरकी सांसकी तरह चलते ही रहना है। ठहरना जीवन नहीं है। देवमन्दिरोंके घण्टे मानो बस्तीकी वाणीसे बस्तीके प्रार्थना-शब्दोंको गुंजानेके लिए बजते थे। वह चाहे जिस गांवकी जिस गलीमें बोले समस्त मानवताके गौरवसे मीठी और दोषोंकी बोली बोलता था। पोपले मुखका मुक्त हास्य मानो तुलसीके मुखड़ोंमें कहनेको भी चाहे, 'कहा कहउँ छवि आज की ? कब सहज साम्राज्यवादी वातावरणमें बढ़कर शक्तियोंकी कमजोरी उसके अन्तःकरणमें खूब उठती थी। वह इच्छा करे और विघ्न न उठे यह कैसे हो सकता है यह कौन मान ? भुजाएं ? जिसने कहनेवालोंने क्यों अपने हृदयमें अनुभव नहीं किया। किन्तु कहनेवाले क्यों आज भी अपने हृदयमें अनुभव नहीं करते ? यदि व्यासके ज्यादा बलवान् होने तमकी तो उसकी एक मुसकराहट या एक झिड़कीमें उसका कहीं पता भी नहीं चलता। एक छोटी बोलता था उठो जागो स्वतन्त्र हो। अपने रामके आगे हाथ पसारकर वह कार्यक्षेत्रमें यही मांगता रहा कारागृहमें उसने यही मांगा। वधगृहमें भी यही मांगा।

इसे शोक हो कि उसे किसीने क्यों मार डाला ? जिस हिंसाकी वह उसने पच्चीस बरसतकके लिए विश्वको झकझोरा था उस हिंसासे गान्धी-

को नहीं मारा, अपने-आपको बद्ध कर लिया। आज वे कहाँ हैं जिनके पद-चिह्नोंपर वाल्मीकिके वचनका हस्ताक्षर है? आज उसकी समाधियोंसे भी सुगन्ध आ रही है कि जिस सुगन्धित वायुसे भारतीय राष्ट्र साँस ले रहा है। चित्रकार चित्र बनाता है, मूर्तिकार पत्थरोंपर इन्सानकी कोमलताको उतारनेमें व्यस्त रहता है, नर्तक शरीरके सन्तुलन और अम्बर रसराजका अवतरण करता है, वायुके वृक्षोंके पत्ते फूलों और कलियोंको चूमने लगते हैं। सृष्टिका प्रजनन चला, उपवनों और पर्वतोंमें पत्थरोंसे उपजकर गुम्बद कलशसे ऊपर उठ रहा है और फूल और फल बनकर पत्थरोंकी भाषामें भर रहा है। ऐसे समय हम मानो अपनेसे पूछते हैं, धन्य! तुम्हारी आराधनासे कलाने पुरुषार्थको उद्दाम हाथोंसे और कलाको कामद होनेसे बचा लिया। जहाँ तुम्हारी आवाज है, वहाँ कान आज चाहे न पहुँच पाते हों, किन्तु मनके कान उसे सदैव सुनते रह सकते हैं। अँगुलियाँ चाहे तुम्हारे चरणोंको न छू सकें किन्तु आँखें उनमें तुम झूम सकते हो, झूम रहे हो। तुम्हें वन्दन, तुम्हें अभिनन्दन।

१

महात्मा गान्धी

४

गान्धीजी कहा करते थे 'जवाहर कुछ भी कहे मेरे मरनेके बाद वह मेरी बोली बोलने लगेगा।' कितना सत्य है यह कथन। लगता है गान्धीजीकी दो भुजाएँ भारतवर्षपर छा गयी हैं जवाहरलाल और विनोबा भावे। बापूके राजनीतिक चिन्तनकी अद्भुत विशेषता हम प्रत्येक प्रान्तमें देख रहे हैं। समस्त देशमें आज वही लोग सफल राजनीतिज्ञ हैं जिन्होंने महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें शिक्षण पाया है। राष्ट्रपतिसे लेकर मुखियाका नागर तक सारे देशमें एक दृष्टि दौड़ाइए और बदलते हुए भारतवर्षके साथ अनुभव कीजिए कि गान्धी जीवित हैं युगों-युगों अमर हैं और वह अपनी भ्रू भंगिमासे मृत्युका उपहास कर रहा है। जब गान्धीजी थे उनकी 'अँगुली' का संकेत राष्ट्रका नियमन करता था आज उसकी प्रेरणाके बल-पर भारतवर्ष जिसके सामने ऊँचा मस्तक किये हुए खड़ा है।

अभी उस दिन तक हम उसे खुली आँखों देखते थे और प्रहारके लिए, पुष्पहारके लिए, सत्कारके लिए, और समर्पणके लिए हमारे हाथ उस विभूति तक पहुँच जाते थे। आज आँख मूँद लेनेपर वह अलौकिक नायक मानो हमारे पास खड़ा-सा दिखायी देता है। अब हम भुजाओंके बल नहीं स्मृतियोंके बल उस तक पहुँचते हैं। अब साबरमती सेवाग्राम या दिल्ली की भंगी कालोनी जानेके लिए खरीदी हुई टिकिट हमें गान्धीजीके पास नहीं पहुँचा पाती। अब गान्धीजीको पानेके लिए हमें स्वयं अपनी मुकाम अपने ईमानमें अपने अन्तःकरणमें खोज करनी होती है।

शंकराचार्य नहीं था वह अपनी महिमा स्वामी भी नहीं था किन्तु लोग उसकी बात धर्मशास्त्रकी तरह सुनते थे। वह शासक नहीं था किन्तु

सुभाष मानव   सुभाष महामानव

जब तुम भारतसे गये लोग कहते थे तुम बीमार हो घरसे बाहर नहीं निकल सकते और तुम थे कि घरसे क्या देशसे भी बाहर चले गये। गरज यह कि रहस्य सोचा शरतचन्द्रने रहस्य काव्य बनाकर लिखा रवीन्द्रने और रहस्य अवतरित हुआ तुम्हारे रूपमें।

तुम जब युद्धसे लौटे लोगोंने सोचा तुम अमरीका और इंग्लैण्डसे फिर बागोंमें बन्दी होगे तुमपर मुकदमा चलेगा दण्ड दिया जायगा। हिरोहितो हिटलर पेता और तुम सबका मार्ग एक साथ थे। सर्वनाशमें मित्र दण्डों-की मुताबिक अलग-अलग तिथियोंमें मरे होगे किन्तु भाग्य परिणाम इन और माया वे एक ही होते।

किन्तु फिर तुम्हारा विमान चला अपने सिपाहियोंसे विदा लेकर किसी अज्ञात लोकको लोगोंने कहा कि वह विमान गिर गया विमान टूट गया तुम गिर गये तुम अज्ञात लोकके यात्री अनन्त आकाशके यात्री हो गये। तुम्हारी मृत्युपर कुछके बीच काँटा चुभ गया कुछके बीचसे काँटा निकल गया किन्तु तुम्हारी मौतपर देशवासियोंने विश्वास नहीं किया वे सोचते रहे और सोचते रहते हैं कि 'किसी दिन किसी देशमें किसी वेशमें तुम उभर निकलोगे। किन्तु तुम तो रहस्य हो न? जीवनमें मरणमें तुम्हारा स्वभाव कैसे बदलेगा? एक बात सच है भारतका भाग्य बने भारतका भाग्य बिगड़े तुम अब इस निर्माणके हिस्सेदार नहीं हो सकते।

तुम दुनियासे हटे या न हटे विश्वमंचके परदेसे हट गये। जैसे कठोर निर्णय हो गये हैं आँसुओंका देनेने मनुष्यको मुस्कराता और निर्माणमय मुक्त जाने अनन्त देख रहा है।

तुम लोगोंके मनपर हो जीवनपर छाये हो क्योंकि तुमने भारतीय जीवनको मुझके जीवो-जीव 'जीवित' किया है। तुम भारतीय विश्वासोंपर छाये रहे हो क्योंकि स्वतन्त्रता मिलनेके दिन व तुम्हारे प्रयत्नोंका मूल्य चुकाना चाहते थे किन्तु तुम न थे तुम पास न थे। 'रहस्य' पर भी क्या किसीका कब्जा होता है? तुम भारतीयोंकी कल्पनाभावपर छाये हुए हो। अब उद्दाम चिन्तन अनुकरणमय शासनभाव सिमेटे होते हुए भी यादें आकाशमें तुम्हें खोजती हैं पुकारकी वाणी मानो क्षितिसे टकराकर लौट आती है आँखोंमें कोई खोजता है किन्तु वहीं खोजकर उसे हृदयसे नहीं लगा पाती। 'भरा संयोगकी स्थिति आशा नहीं देती। वह तुम्हें सामने लाकर खड़ा नहीं कर देती है। याद करनेको भारतीय मन राजी नहीं होता। वह मानता है कि तुम जहाँ कहीं हो हो अवश्य।

तुम 'रहस्य' हो गये। इस देशके सामन्त और योद्धा और शक्तिशाली प्रायः रहस्य होते आये हैं। वे जनमानसोंको अनन्त सामर्थ्यसे जगाते हैं और संकटोंके समय रहस्य हो जाते हैं।

तुम शक्तिमयी तुम रक्त-क्रान्तिके होता तुम सेनानी तुम सिपाह साकार! क्या सौन्दर्य था तुम्हारी आत्ममूर्तिमें! तस्वीरकी तो मानो

अमन्याही तुलसी फिरैं भाही मीड़ैं हाथ

की दशा थी तलवार लेकर तबीयतपर आनेवालोंकी अथवा तलवारवालोंकी तबीयतपर बाग-बाग होनेवालोंकी।

तुम्हारे आस-पास नहीं तुम्हारे पास बैठा बहादुरी मानो जनरेखा-सा अनहामापन बनकर देखनेवालोंको अचम्भेके जादू भरे उल्लास बाँटती रहती। और संभाल यह तो मानो

नैनों के पंगले में तुम्हें सैनों से बुला लेगी,
पलकों की चिक डाल पिया को पुतली पर सुला लेगी

क्या नहीं कहती रहती है। अपनी कीमत जमरोंसे भी अधिक कूतनेवाला मन बोलता नहीं है न। बड़े मँहगे मोलोंकी थी तुम्हारी यह मनमोहनी

मरण-ज्योतकी मस्ती।

बंगालके लाड़ले तुम अपने-आप क्रान्ति-पथपर नहीं आये। तुम्हें खींचा था प्रबुद्ध लोगोंमें देशबन्धुदासने। प्यार करनेवाला और खींचने वाला मानो सब निहाल हो उठे जब उन्होंने देखा कष्ट सामने आनेपर तुम अधिक कष्ट भोगते और त्याग करनेपर तुम और अधिक त्यागके लिए बेचैन हो उठते। तुम कष्टको ओढ़ते त्यागको पुष्पित करते। रहस्य मानो तुम्हारा स्वरूप ही नहीं स्वभाव भी था।

तुम्हारी जीवन-यात्राएँ बड़ी विचित्र रहीं। तुम चले थे आई. सी. एस. का इम्तहान देने अपने ही भाइयोंको गुलाम मानकर गुलाम बनाकर विदेशी हुकूमत करनेवालोंको 'बरतानिया' में मिलने और पहुँच गये थे आयर-लैंडके क्रान्तिकारियोंमें जहाँ अपने हो भाइयोंको गुलाम बनानेवालोंका शिकार खेला जाता और भाइयोंको जन-देवता मानकर उनकी पूजा की जाती मानो रणका टिकिट लेकर, देश-सेवाके क्रान्ति-पथमें स्वयं पहुँच गये। इसी तरह तुम प्रस्तुत थे देशभक्तोंके साथ किसी विदेशी जेलमें युद्धकाल बिताने के लिए और पहुँच गये युद्धके बीचो-बीच ब्रिटेनके शत्रुओंको मित्र बना युद्धकी सेनाके निर्माणकार और भारतीय स्वातन्त्र्यके प्रथम शासनाध्यक्ष कहलाये। फिर विश्वयुद्धके ख़तमेपर, अपने सिपाहियोंसे विदा लेकर तुम चले थे किसी सुरक्षित स्थानकी ओर जहाँसे तुम जनकी शक्ति बनकर भारतीय राष्ट्रके शत्रुओंको मज़ा चखा सको। और विमान टूटनेसे तुम पहुँच गये अनन्तके लोकमें जहाँ देवता तुमपर पुष्प-वर्षा करें। फिर यह कि जीवनके यात्रा-पथमें तुम्हें मनचीते से बड़ा प्रमुखोंका मिलना रहा।

जीवन-पथ भी तुम्हारा संघर्षमय रहा। देशबन्धु देहलोकवासी हुए, तब बंगालका नेतृत्व तुम्हें प्राप्त न था। देश-हित अनुष्ठानमें कठोर संघर्ष हुआ। ऐसा संघर्ष जिसमें तुम्हें पछाड़ मिली।

कांग्रेसके अखिल भारतीय पथमें तुम्हारे सामने अवरोधक थे। क्रान्ति-कारियोंका दल बंगालका दल और भारी हलचलके बाद भी गान्धीजी

और मोतीलालजीके सम्मिलित बलके सामने तुम छोटे पड़ गये। तुम्हें पुनः कलकत्ता कांग्रेसमें (१९२८) ठोकर मिली।

जब तुम स्विट्ज़रलैण्डकी रोग-शय्यापर पड़े स्वतन्त्रताका स्वप्न-चित्र बना रहे थे, तब तुमने अपने देशवासियोंको चेतावनी दी थी कि वे गान्धीके नेतृत्वसे दूर हट जायें, किन्तु जब तुम लौटकर भारत आये, तब देशभक्त भारतीयोंमें डॉक्टर खरे और न जाने कौन-कौन गान्धी-विरोधी तुम्हें स्वयं ग्रहण करने पड़े, और गान्धीके आशीर्वादोंसे भरी हरिपुरा कांग्रेसके सभापतित्वकी माला—यह राष्ट्रपतित्व तुमने स्वयं गान्धी और वल्लभभाई और गान्धीवादियोंके हाथों ग्रहण किया। इसमें भी कौन हारा, तुम या गान्धी?

फिर डॉक्टर पट्टाभीसे लोहा लेकर, गान्धीको पीछे ठेलकर तुमने त्रिपुरी कांग्रेसकी गद्दी जीती। कितनी कटुता, कितनी भर्त्सना, कितने इल्ज़ामोंके बीच। एक-सौ तीन ज्वरमें भी कौन इल्ज़ाम तुमपर नहीं लगा, किन्तु तुम्हारी जीती हुई गद्दीपर राज किसने किया? यहाँ भी तुम्हारा मार्ग कठोर संघर्ष था। तुम्हें हारना पड़ा। कलकत्तामें तुमने कांग्रेसकी गद्दी छोड़ दी।

वह भी एक दिन था। तुमने सोचा, तुमने ठाना, तुमने शुरू किया कि कांग्रेस-जैसी एक समानान्तर जनशक्तिकी संस्थाका निर्माण करोगे और मेल किया भी फ़ॉरवर्ड ब्लॉकसे, जो तुम्हारे बाद लीगके ज़हरसे बंगालको भूखा मारने और दंगोंमें भून डालनेमें ही सफल हुए।

किन्तु तुम गान्धीके साथ जेलमें बैठकर माला जपनेको तैयार न थे। तुम युद्धको प्रभु-द्वारा प्राप्त स्वर्ण-सन्धि समझते थे और भारतीय आज़ादीके लिए उसका उपयोग करनेके लिए इतने निश्चित थे कि 'प्राण जायें' तो भी तुम इस अवसरको छोड़नेके लिए तैयार न थे। ऐसे निश्चय-के लोगोंके भाग्यमें फूलोंकी शय्या कभी नहीं रही होती। उनके गलेमें पड़े फूलोंके हार, जिनके सुगन्धाभावमात्र अस्तित्वकी क्षणिकताके सिवाय और क्या व्यक्त करते हैं।

तुमने अपनी दृढ़ताको कभी भी अवसर-वादिताकी गन्दी चादरसे नहीं

दीक्षा। बड़े तुम्हारी पूजाके पात्र थे तुम्हारा पथ-भंग करनेके हकदार नहीं। तरुण तुम्हारी सेनाके सिपाही थे मातापर कुरबान करनेकी हवन सामग्री! तुम्हारे प्यार दुलार, रोमाञ्च और चुम्बनमें-से कुरबानीके वज्र धूमकी सुगन्ध आती थी और सिर उतारनेके रक्त-बिन्दु उनमें-से चू पड़ते थे!

पुलिसका कितना पहरा था। कलकत्तेमें उस समय स्कॉटलैण्ड-यार्डके शिक्षाप्राप्त कितने पुलिस शिकारी तुम्हारे दायें-बायें तुमपर निगाह रखते हुए। फिर तुम बीमार तुम्हें खाँसी लग आयी। और एकाएक तुम गायब।

हिटलरका तुम्हें भारतका प्रथम वाइसराय बनाना। महीनों कोई खबर न पाकर भारतीयोंको तुम्हारी मृत्युकी दुर्घटना और एक दिन तुम्हारा सैगाँव रेडियोपर भारतीयोंसे बोलना। और वह आज़ाद हिन्द सेना यह युद्ध यह तैयारी। मानो युवक महान् और परम मौतसे तूफानके हाथों तुमने अपने-आपको हँसते-हँसते सौंप दिया।

और एक ब्रिटिश-युद्धको जन-युद्ध कहनेवाली देशघातकता देशमें कहने लगी 'वह जापानका एजेण्ट हो गया'। वह देशघातकता जो तब जापानके महान् पड़ोसीके हाथों रोटियों और नारोंपर बिक चुकी थी किन्तु तुम थे कि ज़मानेकी छातीपर लिखे अपने सुनहले नामको अपने हाथों मसलकर मिटा देनेको मूल्य तत्पर, अपनेको संकटोंमें फेंक चुके थे कि 'भारत तू आज़ाद हो जा'!

और आज! आज तो सब तुम्हारा गुण गाते हैं। तुम्हारे सिपाही भारतीय सेनामें ले लिए गये हैं। तुम्हारा 'जय हिन्द'का नारा भारतवर्ष और भारतीय सरकारका नारा हो गया है और स्वर्गीय शरत् बोससे स्वर्गीय सरदार-श्री गले मिले थे और उन्हें भारतीय मन्त्रिमण्डलमें जगह भी मिली थी। किन्तु तुम? भारतीय तरुणाई अपनेमें जब-जब बल खोजेगी तो तुम्हें पुकार उठेगी!

एक भारतवासी सिर्फ एक भारतवासीने अपनी सब सम्पत्ति तुम्हारे नाम कर दी थी। वे थे सरदार पटेलके ज्येष्ठ भ्राता श्री विट्ठलभाई पटेल।

इतनी शक्ति कौन अपनेमें संचय करेगा ? यदि भारतको आजाद रहना है तो सुभाषकी ताकत अपनेमें रखनेवाला सिपाही सिपहसालार सेनानी ही उसे आजाद रख सकता है।

और यदि आज सुभाष किसी ओरसे आ जाये ? तो वह अपनी स्त्री और पुत्रीके साथ महान् बड़की वस्तु होगा किन्तु वह पूजा पायगा प्रजम का भार तो उसे किसी नवजवान ही को सौंपना होगा।

उसकी अनन्त असफलताएँ और मोद-भरी अगणित सफलताए भारत को सम्पूर्ण सफल बनाकर गौरवमयी हो गयी है। क्रियाशील स्वप्नदर्शी भक्त और साधक जब अपने सर्वस्वोंपर समर्पित हो संकटोंपर चढ़ता है तब उस व्यक्तिकी असफलताएँ समाज और समूहकी सफलता बनकर देशोंके रक्तमें कौंध्नी आयी है।

तुम अरविन्दके न हुए,
तुम गान्धीके न हुए,
तुम समगुप्तके न हुए,
तुम जवाहरके न हुए,
तुम अपने न हुए,
तुम हुए केवल मातृभूमिके भारतभूमिके !
तुम्हारी असफलताओंपर कुंकुम
तुम्हारी सफलताओंपर अक्षत
तुम्हारी सेवाओंपर पुष्प
तुम्हारी सेनाओंपर दीपदान
तुम्हारे निश्चयोंपर जय-जयकार,
तुम्हारे बलिदानोंपर—

आजाद भारतवर्षके—
अमित जय।

०

तेजस्विताके प्रतिनिधि विट्ठलभाई

बंगालके प्राण सेनगुप्ताके देहावसानपर हमने लिखा था — समस्त भारत रूठी हुई स्वाधीनता देवीको मनानेके लिए उसके चरण-कमलोंमें उपहार करनेको बलिदानोंकी माला गूँथ रहा है।

२१ जुलाईको उस मालामें श्रीयुत जे० एम० सेनगुप्ताके प्राण गूँथ दिये थे। २२ अक्टूबरको स्विट्ज़रलैण्डके जिनेवा नगरमें भारतीय राजनीति और तेजस्विताके प्रतिनिधि देशमान्य पटेलको भी उसी मालामें गूँथ लिया। स्वतन्त्रता! आह स्वतन्त्रता! यह इतनी सस्ती चीज नहीं जो दो-चार बलिदानोंमें प्रसन्न हो जाये। इतिहासके पृष्ठोंपर बलिदानके जो स्मृति-चिह्न बने हुए हैं उन्हें पढ़-पढ़कर संसार आँसुओंके समुद्रमें डूबता रहता है।

श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल भारतीय राजनीतिक उद्यानके वह पुष्प थे जिसके रूप और सौरभका संसारपर रोब था। वह गुलाब थे जिसके चारों ओर काँटोंकी बाढ़ रहती है। उन्हें अपमानित करनेका प्रयत्न करनेवालेको शूलोंका एक सहन करना ही पड़ता था। असेम्बलीके मायाजालने कितने लोगोंको पथभ्रष्ट किया और निष्क्रिय नहीं बनाया। उस पदपर पहुँचकर वैभव और अफ़सरी ठाटके बीच सरकारी ओहदेके अपनी आदमी ऐसा रहे जो अपने-आपको अप्रभावित रख सके ऐसी मजबूती किसमें हो सकती है? देश-प्रेम स्वाभिमान और राष्ट्र-मर्यादा उनमें सुरक्षित थी और वह देश-प्रेम स्वाभिमान और आत्म-विश्वाससे सुरक्षित थे।

उग्र समाज-सुधारक और गम्भीर देश भक्तके नाते वह व्यक्ति भारत-की सीमाके बाहर जा चुके थे। परन्तु असेम्बलीके अध्यक्षके पदपर तो वह ऐसे चमके मानो वह नौकरशाहीके लिए धूमकेतु ही हों। जहाँ विरोधी पक्षको अपमानकी सम्भावना हो वहाँ ठोस और बड़े दिलके व्यक्तित्वकी ही

आवश्यकता है। वह असेम्बलीके अधिकार, शक्ति और मर्यादाके संरक्षक माता बनकर प्रसिद्ध हुए। उन्होंने मरी हुई-सी सूनी रक्तहीन कंकालोपम असेम्बलीको भी चमका दिया था।

असेम्बलीके निष्पक्ष अध्यक्ष यदि आज तक कोई रह सके हैं तो उनमें सबसे पहला स्थान स्व० पटेलका है। कौन-सा अध्यक्ष सरकारी प्रभावसे अछूता रहा। स्व० पटेल ही एक ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने अध्यक्षके पदको किसीके इशारोंपर रेहन नहीं रखा। आश्चर्यजनक मृदुता और कूटनीतिके साथ एक बार वह हिज एक्सीलेन्सी कमाण्डर इन-चीफको फटकारते देखे गये। इतना साहस एक भारतीयमें? ऐंग्लो इण्डियन पत्रोंका कोई ठिकाना था? अँगरेजोंने इतने दिनों शासन करना ही सीखा था। गुलाम भारतमें आकर बहुत दिनोंसे शासित होना भूल गया था। एक भारतीय-द्वारा कमाण्डर इन-चीफ-जैसे व्यक्तिको जो वायसरायके बराबर हैं, जलील होना पड़े! बात वास्तवमें आश्चर्यजनक थी पर वह न्याय और निष्पक्षताका अटल पुजारी विधानको व्यक्तियोंके ऊपर ही देखना चाहता।

वह असेम्बलीके अध्यक्ष रहकर भी देशको भूले नहीं। कभी बारडोली सत्याग्रह कैम्पमें चक्कर देते देखे गये, कभी राष्ट्रीय महासभामें उपस्थित होते हुए, कभी हर रॉयल हाइनेस रानी मेरीसे हाथ मिलाते हुए। जहाँ पहुँचकर सभी रंग बदल देते हैं ये खरे सोनेकी तरह निकले। एक लेखकने लिखा था — 'उस समय विट्ठलभाई स्वराजी न रहकर भी देशभक्त बने रहे, स्वराजियोंमें न पड़कर भी स्वराजी बने रहे।'

बार-बार जेल-जीवनने उन्हें जल्दी ही संसारसे विदा लेनेको बाध्य किया। वह भारतकी स्वतन्त्रताके लिए आठों पहर परेशान रहते। बीमार अवस्थामें भी चुप नहीं रहे। मृत्युके मुँहमें जाते-जाते भी भारतके सम्बन्धमें प्रचार करनेमें लगे रहे।

पटेलको खाकर हमने भारतीय स्वाभिमान, गम्भीर प्रकृति, कूट राजनीति, निर्भीकता, अपूर्व साहस, अमन दृढ़ता, दूरदर्शिता और स्वतन्त्रता

की एक प्रतिमाको खो दिया है।

उनके अभावको जो आज राष्ट्रकी राजनीतिक क्रिया वह सहसा भर नहीं सकता। वह अपना सानी आप ही थे। चाणक्य-जैसे व्यक्ति बार-बार नहीं जनमते। सरकारके वैभव और अपार शक्तिको प्रत्याख्यान करनेवाले व्यक्ति कभी-कभी ही मैदानमें दिखायी देते हैं। अभिमन्युके समान शत्रुके चक्रव्यूहमें घुसकर उखाड़-पछाड़ करनेवाली वीरता विरलोंको प्राप्त होती है।



गणेशशंकर एक समस्या

हिन्दीके परम प्रेरक आत्मा श्रीयुत गणेशशंकर विद्यार्थीके स्वर्गारोहण धीरे-धीरे इतने वर्ष बीत गये। बलिदान-मन्दिरके प्रांगण [illegible] आत्माका वह चित्र प्रतिक्षण हमारे सामने आता है और बड़ी निष्ठुरतासे इस [illegible] याद किया जाता है जिसे गणेशशंकरजीके बलिदान [illegible] उस दिन मंजूर करनेको तैयार था। उस दिन न केवल एक [illegible] अपना सर्वस्व खोया बल्कि हिन्दी-समाजने अपना [illegible] भारतीय पत्रकार जगत्‌ने एक आदर्श [illegible] विभिन्न [illegible] परिस्थितियोंमें जूझनेके [illegible] अपना [illegible] और [illegible] और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके आधार [illegible] आन्दोलनोंमें साम्प्रदायिक कट्टरताकी [illegible], जिन्होंने [illegible] परिचायक बेदाग ईमानदारी और निर्भीक [illegible] कुरबान रही। मार्चकी वह २५वीं तारीख सन् १९३१ है जबकि [illegible] कभी इतनी निष्ठुर हुई थी।

गणेशशंकर व्यक्ति नहीं संस्था थे' यह तो कई बार दोहराया गया, किन्तु हिन्दी-संसारका दुर्भाग्य कि दो-चार छोटे-मोटे संस्मरणोंको छापकर उनके गणेशशंकरजीकी यादमें किसी संस्थाका निर्माण एक जगह [illegible] भी नहीं हो सका। महत्ताको यदि उनके बाद ईमानदारीसे समझा जाये तो कहना चाहिए कि गणेशशंकरके जीवन-पृष्ठ लगातार इतने वर्षों तक हमारे सामने खुले रहनेपर भी हम उनके आदर्शोंकी ओर कितनी गति कर पाये। इन वर्षोंमें प्रयाग, काशी, लखनऊ, देहली, आगरा, पटना एवं नागपुरके विश्वविद्यालयोंसे लाखों छात्र डिग्रियाँ लेकर निकले किन्तु निर्माणके क्षेत्रमें इनमें अपने जीवनकी इतना उतार साबित होंगे किया कि गणेशजीकी कुरबानी प्रश्न-चिह्नकी तरह हमारे सामने खड़ी है और हम

उसको चुनौतीके सामने नतमस्तक होनेको बाध्य है ।

गणेशजी पत्रकार थे । 'प्रताप' उनके विचारोंका वाहक था । वही एक ऐसा पत्र था जो सन् १९१५में एवं उसके आस-पासके राष्ट्रीय प्रकाश विरल वातावरणमें अपनेको दावपूर्वक कांग्रेसी कह सकता था । सरकारी प्रलोभन शासनके तीखे रोषको उसकी मुसीबतें और राजनीतिक मतभेदों-का बहुरंगा वातावरण कोई भी समस्याओंके शिथिलकारी तेजको मन्द न कर सका । राष्ट्रीय क्षेत्रमें गणेशजी राष्ट्रीयताके समर्थक थे परन्तु उनके जीवनमें ऐसी घटनाएँ भी आयीं जब कि उन्होंने राष्ट्रीय परिपाटी मात्रका पालन आवश्यक नहीं समझा । वे राजनीतिमें निर्धारित पथ एवं शैली का निर्वाह मात्र करते चले आनेवाले नेता नहीं थे प्रत्युत एक ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व थे जो स्वयं अपनी अन्तःप्रेरणासे अनुप्राणित हुआ करता है ।

'प्रताप' एक दिन उनकी शक्ति था दूसरे दिन हिन्दी-जगत्की श्रद्धा बना और आज वह उनकी शुभ-स्मृति है । पत्रकार-कलाके हिन्दी स्वरूपके 'प्रताप' नामक राष्ट्र-मंचसे गणेशजीने कायरोंको देश-घातकोंको मदान्धोंको कुचक्रोंको अत्याचारियोंको और स्वार्थियोंको लगातार चुनौतियाँ दीं और परिणाममें उन्होंने अपमान धन-हानि और कारागार सहे । अब वे जेल जाते तो उनके पद चिह्नोंपर चलनेवाले उन्हें 'तिलक' करते किन्तु यह इतना महँगा होता कि उतना महँगा तिलक लगानेवाला मस्तक ढूँढनेके लिए हिन्दीकी राजधानी क्योंकि मानो घर घर ढूँढती फिरती है । हम जानते हैं कि 'प्रताप' की कठोर नीतिसे व्याकुल होकर और अपनी प्रशासनकी पराजयसे लाचार होकर एक प्रधान देशी नरेशने गणेशजीको अपने राज्यके प्रजाजनके भाव स्नेहसे हाथ बढ़ाकर मिलने बुलवाया और भेंटमें एक वस्त्रके साथ भारी सम्पत्ति पेश की । गणेशजीने कपड़ा रखकर सम्पत्ति लौटा दी और कहा "कपड़ा लेकर आपने आपका आदर किया है । रुपये लेनेकी 'प्रताप' आज्ञा नहीं देता ।"

गणेशजीने यह कभी बर्दाश्त नहीं किया उनके प्रभाव एवं सामर्थ्यके भीतर रहते हुए कोई कार्यकर्ता या मित्र चाहे वह किसी भी क्षेत्रका क्यों न हो मुसीबत सहे और वह बैठे रहें। अर्जुनकी तरह जहाँतक उनके 'हाथों' की पहुँच थी कार्यकर्ता अपने संकटोंमें गणेशजीको अपने साथ पाते। वे उन व्यक्तियोंमें रहे जो अपने कार्यशील मित्रोंमें दूधकी तरह हिलमिल हो जाते थे अतः उनके संकल्पोंसे कल्पनाकी दुनिया सक्रियता में घुलकर उनकी महत्ताका आकलन नहीं कर पाती थी। एक बार दादाभाई नौरोजीके स्मारकपर लिखते हुए गणेशजीने कुछ इस आशयका लिखा था 'हम अब अन्धेरे-बाजारमें मोमबत्तियाँ ढूँढते हैं उससे पहले सूर्यके प्रकाशमें सूर्यको कद्र नहीं कर पाते।' आज यह बात उनके ऊपर अपनेसे चलती चली आ रही है।

श्री गणेशजीने अपना सिर देकर मानो यह संकेत दिया था कि स्वातन्त्र्यके देवताको हाथ-पाँवसे जमीनपर उतारनेके लिए हम सिर देनेकी यह बेली सहस्र-सहस्रगुनी हरी-भरी रख सकें। अतः सिर देनेका यह संकेत हिन्दी-जगत्‌की तरुणाईको याद रहे तो २५ मार्चकी स्मृति कभी अपमानित न हो और क्रान्तिकी चिनगारियाँ कभी बुझी न दीख पड़ें। गणेशजीको याद करते समय हम एक बार यह सोच लिया करें कि हमारे सिर भी है और हममें रक्त भी है, और युगका आमन्त्रण न जाने कबसे हमपर उधार है।

यदि हम चक्करदार रक्त-करने कबूल करनेकी मानवसुलभ दुर्बल भावनाको ठुकरा सकें तो हिन्दी-जगत्‌के नाते हमें ऐतिहासिक धरोहर और प्रेरणामय मूल्यवानके नाते 'प्रताप' और उसकी सम्पत्तियोंकी रक्षा किये जाना चाहिए। यही हमारी सच्ची गणेश-पूजा है।

स्वागतं ते महाभाग विनोबा

जाने कब किसने जमानेकी स्मृतिमें 'संघे शक्ति कलौ युगे'—वाली बड़ी बात शामिल कर दी और तबसे आज तक बिना सोचे-समझे लोग इस भ्रान्ति को दोहराते चले आ रहे हैं। विचारकी कसौटीपर चाहे जिस युगको कसिए व्यक्ति और केवल एक व्यक्ति मिलेगा जिसके महान् पुरुषार्थपन-के चारों ओर, व्यक्ति-समूह, सौरमण्डलके उपग्रहोंकी भाँति चक्कर काटता हुआ पाया जायेगा। वह शक्तिसागर, पूर्व और पश्चिमके मौलिक मतभेदों की अनुकूलतासे गान्धी हो या लेनिन या स्पार्टकस जैसा कोई और व्यक्तियों-की शक्ति-धारा उसमें अपना जीवन विलीन कर देनेको विवश है।

अपने जीवनमें समूहकी अपेक्षा गुणको सदा अधिक महत्त्व देकर महात्मा गान्धीने एकसे अधिक बार उपयुक्त भ्रान्तिपर प्रहार किया। और अभी उस दिन गान्धी-विचार रश्मियोंसे आलोकित आचार्य विनोबा जब गान्धीके अकाल अवसानसे अपरिपूर्ण कार्यकी पूर्तिका उद्देश्य लेकर दिल्ली पहुँचे तब उनके साथ उनके दो-चार ऐसे भी साथी थे जिन्हें याद रखनेमें इतिहास अक्सर भूल कर दिया करता है। अतः आज एक बार फिर यह प्रश्न सामने आता कि समूहकी अपेक्षा व्यक्तिको युग-पुरुषको क्यों न शक्ति एवं सामर्थ्यका स्रोत माना जावे?

हाँ यह शक्ति-स्रोत निश्चित जमानेका साथी होता है। अपना जमाना वह स्वयं निर्माण करता है। उसके आरोह-बिन्दुओंको छू सकनेमें सर्वथा असमर्थ नीचे-नीचे चलनेवाले लघु-समुदायोंकी रीस और खीस उसे अपने अभिमतसे विमुख नहीं कर पाती। जमाना लाचार होकर उसके पीछे चलनेको बाध्य होता है।

जिसको एक प्रवाह कहा जाता है। प्रवाह तो निम्नगामी स्वरूप।

युग-पुरुष इस चिरन्तन प्रवाहको अवसरके पतन-पथसे खींचकर चिन्मय केन्द्रकी ओर मोड़ देता है। राष्ट्रके जीवनमें ऐसे ही मोड़ उज्ज्वलतम अध्यायोंका सृजन करते हैं।

बेचारा इतिहास ! विनोबाने अभी उसे अवसर ही कहाँ दिया कि वह उनका परिचय लिखे। प्राचीन ऋषियोंके अनुगामी इस साधकने अपनी साधनाके परिणामोंको नीरस और उपेक्षित रचनात्मक कामोंकी धूममें धूम के खोनेकी भाँति इस सावधानीसे बन्द रखा कि इतिहासके गुप्तचर उसपर आँख नहीं डाल सके।

महात्माजीसे मिलनेके बाद १९१६ से लगाकर उनके निर्वाण सन् १९४८ तक बत्तीस वर्षोंकी लम्बी अवधिमें विनोबाजीने अपने नामको प्रतिबिम्बित छपनेके लिए समाचारपत्रोंको केवल तीन मौके दिये और वे तीनों लगभगी। असहयोग-आन्दोलनकी प्रबलताके बीचा-बीच सन् १९२१ में मध्यप्रान्तीय सरकारकी निरंकुशता मध्यप्रान्तकी तरुणाईको राष्ट्रीय झण्डेके सम्मानकी रक्षाके लिए चुनौती दे बैठी। नागपुरमें झण्डा-सत्याग्रह छिड़ा। तत्कालीन सरकारी अधिकारियोंने सत्याग्रहका संचालन करनेवाली समितिको सहसा गिरफ्तार कर लिया। साधनानिरत विनोबा का आसन झण्डेको मानरक्षाके लिए डोल उठा। सत्याग्रह-संचालनका भार संभालनेके लिए वे बाहर आये किन्तु दूसरे दिन सत्याग्रह प्रारम्भ करनेके पहले ही वह भी गिरफ्तार कर लिये गये। समाचारपत्रोंके शीर्ष स्थानमें विनोबाके आनेका यह प्रथम अवसर था। यह शुभ प्रारम्भ मध्य प्रान्तमें उनके अधिपत्यपर आरूढ़ होनेसे हुआ।

सुदूर दक्षिण केरलसे आयी एक दर्दकी पुकार। गान्धीजी बेचैन हो उठे। प्रभुके दर्शनोंसे वंचित हरिजनोंने मन्दिर-प्रवेशके लिए वहाँ सत्याग्रह छेड़ रखा था। विनोबाको उसके संचालनके लिए वायकोम भेजा गया। यह सन् १९२४ था जब विनोबा दूसरी बार सामने आया।

अविच्छिन्न तीसरा अवसर बड़ा देरसे पहुँचा—सन् १९४ में। गौरव

और महत्त्वमें यह सबसे आगे रहा। इसका यश भी इसी प्रान्तको मिला। गान्धीजीकी नजरोंमें भारतीय जनता सामूहिक रूपमें सत्याग्रहके कठोरतर अनुशासनोंको पार करनेमें असमर्थ ठहरी। अतएव भारत सरकारकी युद्ध नीतिका विरोध करनेके लिए उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रहका विकल्प निश्चित किया। आचार्य विनोबा इस अस्त्रके प्रथम होताके गौरवसे अभिषिक्त हुए।

एक ओर राजनीतिक प्रसिद्धिके क्षेत्रमें प्रथम आनेकी मची हुई स्पर्धाको देखिए। त्याग और कष्टसहिष्णुताका ढिंढोरा पीटते हुए, उसी पूजा-प्रतिष्ठापर पाँव रखकर आगे हो साथियोंमें श्रेष्ठ जीवनकी कोशिशोंका तांता बँधा हुआ है। फिर इस व्यक्ति-विशेषकी समर्पण-भावनाको भी देखिए जो साधक जीवनके प्रारम्भ दिन आकर्षणसे अभिभूत प्रसिद्धि और लोक-प्रतिष्ठाको याचककी तरह बार-बार ठुकराता आ रहा है।

बम्बई प्रान्तके कुलाबा जिलेके गागोदा गाँवकी भूमि धन्य है कि विनोबाका बचपन उसकी गोदमें खेलते बीता। तब था विनोबाका पूरा नाम था—श्री विनायक नरहरि भावे। विद्याभ्यासकी लोक-परम्पराके अनुसार सन् १९०७ में बड़ौदाके हाई स्कूलमें नाम लिखा गया किन्तु विद्रोही जीवनका काँटोंका मुकुट पहननेके लिए उत्कृष्ट भविष्य जिन विभूतियोंको वरण करता है उन्हें पाठशालाकी दीवारोंसे बँधी निर्जीव पाठ्यशालाएँ रोक नहीं सकतीं। श्री विनायकने बिना कोई डिग्री लिये सन् १९१६ में प्रचलित शिक्षा प्रणालीको छोड़ दिया। घर और पारिवारिक जीवनकी बाधाएँ, पश्चिमके आकर्षणोंपर टिके भौतिक प्रथाओंसे वैभवको समृद्ध बनानेके प्रयासोंकी दिशामें स्नेह, विलासमय राष्ट्रीके पथके सुखमय आकर्षण, साधारण मानवको लुभानेवाली महत्त्वाकांक्षाएँ, इन सब जंजीरोंको तोड़ते आरंभमें ही श्री विनायकने मुक्तता अनुभव किया। उन्हें उस विद्याकी तलाश थी जिसके लिए कहा गया है— सा विद्या या विमुक्तये।

सबसे बड़े विनायक फिर उनके शेष दोनों भाई भी लोक-भावनाके

महत्तर आदर्शोंकी प्राप्तिके लिए घर छोड़कर चल पड़े।

योग्य मार्ग-दर्शककी खोजमें दीर्घ और मानसिक संघर्षोंके बाद श्री विनायक सन् १९१६ में काशी पहुँचे। महात्मा गान्धी साबरमती आश्रम स्थापित कर चुके थे। पत्र लिखकर आपने महात्माजीसे आश्रममें आनेकी अनुमति चाही किन्तु प्रतीक्षा सहन नहीं हुई। बिना अनुमति प्राप्त किये मेहमान नहीं अतिथिके रूपमें साबरमती पहुँच गये। महात्माजीने अपने आश्रमके प्रारम्भमें ही मानो इस छोटे-से शिव विनायकका स्वागत किया। अपराजित भावपरम्परा अपना नन्हा-सा रूप धरकर मानो सिद्धियोंका भण्डार महात्माजीकी कामनाकी गोदमें सौंपने आयी।

आश्रमवासी विनायकने आश्रममें कर्मठ और कठोर अनुशासनोंकी तपनमें पुकारनेके लिए अपने मन और शरीरको पूरी तरह झोंक दिया जिस तरह प्राचीन ऋषि-मुनियोंके परिचर्या-व्यस्त साधनामय जीवनकी कहानी हम उपनिषदोंमें पढ़ा करते हैं। श्री विनायकका यह आश्रमवास कितना महामय तपोनिष्ठ एवं अध्ययनशील रहा—यह इस प्रसंगसे व्यक्त होता है—दुर्बल अस्वस्थ शरीर विनायककी कठोर श्रमशील किन्तु शिकायतरहित चर्या और परिश्रमसे प्रभावित महात्माजीने एक दिन पूछा इतने दुबले हो रहे हो फिर भी इतना सारा काम कैसे कर लेते हो?

गिने-चुने शब्दोंमें अथाह गहराई लिये हुए उत्तर था काम करनेकी इच्छा-शक्तिसे।

कैसे कहें कि इस शिष्यको अपने समस्त आशालोकसे उद्भासित कर देनेके सात्त्विक उत्साहसे गान्धीजीका हृदय भर नहीं आया होगा।

इस तरह ज्योतिसे ज्योति प्रज्वलित हुई और विचारोंके दीपदान की परम्परा जागृत की गयी। श्री विनायक विनोबा भावे बन गये।

मध्यप्रान्तमें बापूजीके मत पथ और व्रतके एकनिष्ठ प्रचारमें अपना जीवन खपा देनेवाले स्वर्गीय देशभक्त जमनालालजी बजाजकी अनन्य सेवा

भावनासे सन् १९२१में महात्माजी द्वारा वर्धा आश्रमकी स्थापना की गयी। विनोबाजी इसके प्रधान आचार्य बनाकर साबरमतीसे वर्धा आश्रम लाये गये।

महात्माजीके निवाससे गौरवान्वित सेगाँव (वर्धा) जिस तरह सेवा धाम बन गया उसी तरह वर्धासे ५ मील दूरीपर अवस्थित पौनार ग्राम जिसे हरिजन सेवाकी सुविधाके लिए विनोबाजीने चुना विनोबाके चरण पड़ते ही परमधाम बन गया। बापूको अपनेको जीते-जी चाह देनेवाले आचार्य विनोबाने सन्त तुकारामकी वाणीको दोहराकर कहा

'आपुलें मरण
पाहिलें म्यां डोळां''

अर्थात् अपनी मौत मन अपनी आँखों देखी है।

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी-द्वारा प्रज्वलित अभिनव ज्योति अपने अन्तःकरणमें आलोकित किये आचार्य विनोबा महात्माजीके महाप्रस्थान के अनन्तर स्वतन्त्र भारतके हृदय-प्रदेशका द्वेष और कलुषसे निर्मल बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। महात्मा गान्धीके अन्यतम साथी स्वर्गीय महादेव देसाईके शब्दोंमें ऋषियोंकी वाणी दोहरायी जाये तो विनोबाका जीवन उस मन्त्रको जीवन प्रदान कर रहा है जिसमें कहा गया है,

चरन्वै मधु विन्दती चरन्स्वादु मुदुम्बरम्
..................चरैवेति चरैवेति ॥'

सन्त तुलसीदासने भगवान् रामके मुँहसे अनन्य भक्तकी परिभाषा यों कहलायी है

सो अनन्य जाके असि मति न टरै हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त ॥

और उस दिन पुण्यमय प्रार्थनामें विनोबाने शरणार्थियोंके बीच अपने आगमनका उद्देश्य समझाया

'आप लोगोंको ऐसे देखता हूँ जैसे भक्त भगवान्‌को देखता है।

विनोबाके शब्दकोषमें कमजोरी या लाचारीका बोध करानेवाला कोई शब्द नहीं। उनके विचारोंका भाव इन पंक्तियोंसे व्यक्त होता है 'चन्द्रके साथ चन्द्रका वातावरण रहता है, मंगलके साथ मंगलका। वैसे ही मेरे साथ मेरा वातावरण रहना चाहिए। लोग कहते हैं यह तो कलियुग आया है, किन्तु कलियुगमें रहना है या सतयुगमें यह तो तू अपना युग ले। तेरा युग तेरे पास है। इसलिए हम ऐसा न मानें कि दुनियाकी हवाके सामने हम लाचार हैं। लाचार तो जड़ होता है। हम लोग चेतन हैं, आत्मस्वरूप हैं। हमारा वातावरण हम बनायेंगे।

शरीर-श्रमको आज भी विनोबा बहुत महत्त्व देते हैं। उस दिन दिल्लीके राजघाटपर प्रार्थना-सभामें उन्होंने कहा शरीर-श्रम छोड़नेसे ही दुनियामें साम्राज्यशाही और अन्य बुराइयां पैदा हुई हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीके इस सुयोग्य प्रकाश-वाहक और उत्तराधिकारी सन्त एवं लोक-नेताका इन पंक्तियोंके साथ देशके व्यापक क्षेत्रमें हम स्वागत एवं अभिनन्दन करते हैं

"नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः।"

प्रेमचन्द चले गये !

हिन्दी-जगत्‌की कहानीको भारतीय साहित्यकी कहानी बना देनेवाला कहानी-लेखक स्वयं कहानी हो गया! उसकी जीवन-घटनाओंका अब हम अँगुलीके पोरोंपर गिनने मात्रके अधिकारी रह गये हैं। उसकी जिस जबानपर बात-बात मस्तक झुक उठते थे वह जबान सच-सच जबानोंमें बाहरानेकी चाह हो गयी। वह मानव-संस्कृतिका चरित्र लिखता था और हम उसका चरित्र लिखने बैठ गये। जहाँ उसकी कलम खिलवाड़ करती थी और उसकी एक-एक साँस और उसाँसका अपनी आँखोंके कलेजेपर झेल-झेलकर हृदयके भावना-कामना हम मोलका ताका समझकर बन्द रख छोड़ते थे आज हम वह सारा खजाना बाहर निकालनेको तैयार हैं। मगर वह आदमी ही हमारे पास नहीं है जिसका वह खजाना है। उसके सारे साहित्य को लेकर हम मुरदेके मालकी गठरी बाँधे हुए डाकूकी तरह साहित्यके चौराहेपर खड़े हैं और वस्तुतः मालिक लापता है। हम चाहते हैं उस वक्त कोई हम पर बढ़कर रास्तेमें पुकार उठे कि हम निर्दोष हैं हम उस मालके हकदार हैं।

धर्मशास्त्र हमें अपनी संस्कृति और सभ्यताका अरक प्रदान किया करता है। यही कारण है कि धर्मशास्त्रोंका बोझ लादे हुए भी समाज धर्मशास्त्रोंका कभी-कभी छूना-सा भले ही नजर आये परन्तु अधिकतर धर्मशास्त्राभ पढ़ाना-सा और दूर जाना-सा होता रहता है। यह सच है कि हमारे आचरणपर नीतिके कुछ नियमों कलाके कुछ संस्कारों धर्मके कुछ तत्वों इतिहासके कुछ अध्ययनों और विज्ञानकी कुछ जानकारियोंकी छाप पड़ी है। और आवश्यक आड़-व्यवहार शास्त्रीयतामें जीवन और आचरण शास्त्रीयता कभी नहीं भी आ सकती। इनमें जीवनके अन्दर प्रवेश नहीं कर पाती

जीवनके ऊपर जो ठोकर मारकर चढ़ जाती है और उनके लोहू-कणपर तो वे अमर ठोकर मारनेमें भी असहाय और असमर्थ होती हैं किन्तु जब जीवनके लोहू-कणको जगत्‌के उत्थान और पतनकी कहानी अपने तीव्र तापसे गरमा देती है तब आत्मीयता सरलतासे अपनी निर्ममताके रूपमें कहा जाया करती है। पूज्य प्रेमचन्दके अभावमें हिन्दी-जगत्‌के जीवन की सेज निर्माणकी वेदी ठण्डी पड़ गयी।

दुर्भाग्य कि हिन्दी साहित्यमें कविता अलंकार वैद्यक ज्योतिष उपदेश नीति सब कुछ आया और कहानी आयी बहुत देरके पश्चात्। मानो साहित्यके विकास-वृक्षकी यह कली थी जिसे जड़ पिण्ड डालियों तनों और पत्तोंके बाद ही आना था। नैतिकताके लेखकके रूपमें हमने स्कूल-मास्टर पाये इतिहास-लेखकोंके रूपमें मृत जीवनोंके उपासक कविता-के रूपमें देवताओं और देवियोंके दूरस्थ भक्त किन्तु एक कहानी-लेखकके रूपमें हम सम्पूर्ण मानव-रहस्यका उद्घाटनकर्ता पाते हैं। जैसे विधाताके सम्पूर्ण जगत् कृत्रिम मशीनोंमें लगाये और उगाये नहीं जा सकते वैसे ही वे सम्पूर्ण बातें साहित्यके किसी साधनके द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकतीं जिन्हें कहानी और उपन्यास-लेखक व्यक्त किया करता है। कम पढ़े आदमीके पास धर्म पहुँचाता है रसज्ञोंके पास कविता मूर्च्छित हो जाती है और प्रसन्नताके दोलित व्यक्तिके पास और जीवन और लोक-साहित्य वाली कहानियाँ पहुँचा करती हैं। किन्तु जो व्यक्ति गद्य-साहित्य को हिन्दी-जगत्‌के ऊँचों और नीचों सब जगहों तक समान फैला सका चमकनेवाले सूरजकी किरणोंकी तरह बरसनेवाले पानीकी तरह ऊँचों और नीचों पवित्र और अपवित्र विद्वान् और कम-पढ़े सब जमीनोंपर एक-सा साहित्य पहुँचा सका उस हिन्दी-संसारमें प्रेमचन्द आदरसे स्मरण किया जाता है। किसी प्राइमरी भाषाकी ग्राम-पाठशालामें हिन्दी शिक्षक कम पढ़े लिखे किसान पटवारी या मालगुजारके पास किसी शहरके पढ़े-लिखे लड़कोंमें अध्यापकोंमें कचहरीके बाबुओंमें रेलके नौकरोंमें डॉक्टरोंमें

प्रोफेसरोंमें इंजीनियरोंमें साहित्यिकोंमें कलाकारोंमें कवियोंमें यदि किसी व्यक्तिका साहित्य एक-सा विद्यमान है तो वह है केवल प्रेमचन्द और उनके साथियोंका साहित्य।

पाठक जब समाचारपत्रोंको पढ़ते हैं तो वे पत्रोंपर कृपा करते हैं जब अन्य प्रकारके ग्रन्थोंको पढ़ते हैं तो वे ग्रन्थोंपर कृपा करते हैं किन्तु प्रेमचन्दको पढ़नेवाला साहित्यपर एहसान करनेके लिए साहित्य नहीं पढ़ता प्रेमचन्दका साहित्य ही एहसान बनकर उसके पास जाता है। यदि गरीबोंका संगठन धनिकता और निरंकुशताके खिलाफ ग़दर है तो कहानियों और उपन्यासोंके पुंजको भी भावुकताके खिलाफ ग़दर ही कहना चाहिए। जिस तरह भक्तोंने ऋषियोंके विष्णुको लक्ष्मीके साथ क्षीर-सागरका विहार छुड़वाकर, नामदेवकी कुटिया छाने और भक्तोंके साथ मजदूरी करनेके लिए बाध्य किया और इस तरह उनके लिए जल-समाधि बैठे हुए विष्णुको अपने आप खेलने-कूदनेका अवसर देकर जीवन-दान दिया उसी तरह भावुकताके रूपमें बहुत थोड़ोंकी चीज बन जाने और समाजके जीवनसे अधिकाधिक दूर जानेवाले हिन्दी साहित्यको प्रेमचन्द और उनके साथियोंकी युग-निर्माणकारिणी लेखनीने नया जीवन प्रदान किया।

मैं कविताएँ उपन्यास या कहानियोंके साहित्यकी प्रभुता बखान करनेके लिए नहीं कहता यह है कि प्रेमचन्दको खोकर हमने बहुत खो दिया था हिन्दी-अपभ्रंश लिखनेको भी खोकर नहीं खोया। यह वेदना उस समय तीव्रतम हो जाती है जब सोचते हैं कि हिन्दी भाषियोंकी गिरोह-बन्दीने प्रेमचन्दको उपेक्षित कर जाना चाहा। हिन्दी-जनताने जिस व्यक्तिके साहित्यके सर्वाधिक उपरत हासन अपना गौरव समझा वही व्यक्ति हिन्दी-साहित्यके क्षेत्रमें आदर और पुजारी वस्तु नहीं बन पाया।

श्री प्रेमचन्दजीसे मैं कई बार मिला और चर्चा की। सन् १९३१में श्रीयुत बनारसीदासजीके साप्ताहिक कालमें काशीमें उनके सरस्वती प्रेसके

उनसे मिला। ५ अप्रैल सन् १९३५को बम्बईसे बनारस लौटते हुए वे कलकत्ता पधारे। इसके बाद १ अक्टूबर सन् १९३५ को कुछ दस्त मित्रोंके साथ बनारसमें उनके शहरवाले निवास-स्थानपर भेंट हुई। बनारस-की बातोंमें मैंने कहानी और उपन्यासोंके सम्बन्धमें प्रेमचन्दजीकी धारणा जाननेकी कोशिश की। बम्बईमें सफलतापर उनके विचार जाने और उनकी रचनाके प्रेरक-बिन्दुओंकी चर्चा की। कलकत्तामें उन्होंने साहित्यपर उनके साथ समरस होनेके यत्न किये और कुछ खट्टी-मीठी चर्चा हुई। उसके बाद वे प्रयागकी अकादेमीमें जनवरी सन् १९३६ के दूसरे सप्ताहमें और नागपुरके सम्मेलनमें अप्रैलके तीसरे सप्ताहमें मिले। उस समय मैंने देखा वे मनसे बच्चेसे अधिक सरल और मजदूरसे अधिक परिश्रमी किसी बापके बिगड़ैल बेटेसे अधिक अपने स्वास्थ्य अपने स्वार्थ और अपनी कीर्तिके प्रति लापरवाह और अपनी कठिनाइयाँ अपनी रचना और सरलताको ही अपने जीवनका उपहार समझकर मातृभूमिके मस्तिष्कवालोंके बीच भाषा-के दंभ दायरेमें होनेवाले मत भेदोंको मिटाकर सम्पूर्ण भारतको संयुक्त साहित्य-सम्पन्न और सम्मान देनेवाले विचारकोंमें-से एक थे। बम्बईकी चर्चामें मैंने पाया कि प्रेमचन्दजी उस वृक्षके समान हैं जिसमें अपने अमृत तुल्य मीठे फल देनेको बेशुमार शक्ति मौजूद है और जो अपने ऊपर उछलनेवाले कीचड़को ही अपना खाद मानकर दुखियोंके दिमागके आँगनमें बैठकर खाने-अनखाने सुन्दरसे-सुन्दर फलोंका निर्माण किया करता है। जो महात्माओं-द्वारा तोड़ी जानेवाली अपनी डालियोंको जीवनका कुसुम करना समझकर उस भगवान्‌का वरदान मानता है और जो आस-पास अपकीर्तिके काँटे बिखरे जानेपर समझता है कि चलो अच्छा हुआ इन काँटोंसे लाँघकर मेरे पास अब भीड़ भाड़ कम होगी। ग्रामीण और गरीब तो उसाहमें पैर भी काँटोंमें रहनेके आदी हैं वे तो मेरे पास तक पूजा ग्रहण करने आ ही पहुँचेंगे। जो भावोंकी उड़ाई हुई अपकीर्तिके पाथर व्यक्तिके गम्भीर और एकाग्र जीवनका मूल्य कूता करते हैं वे कृत्रिम

जीवनके लोग मुझे कम सतायेंगे। इस भावनासे वे अपनेको भावीकीर्तिमें सुरक्षित मानते।

इसके सम्बन्धमें मेरा उनका थोड़ा मतभेद रहा। उनका विचार था कि व्यक्तिका जीवन समाजका प्रतिबिम्ब है और समाजकी गति-विधि का संकेत करता है और मेरा ख़याल था कि जब जनताकी समुद्रसे मिल-कर लहरोंका ज्वार बनाना छोड़ दिया हो। तब समुद्रकी लहरोंका टूटकर जल-बिन्दुओंमें बँट जाना और केवल उन्हीं बिन्दुओंका चित्रण सम्पूर्ण समुद्रकी उमड़ती ज्वारको विरोधियोंको मिलानेके उसके सामर्थ्यकी उसके अपने गाम्भीर्यकी तूफ़ानी मनने और निवास करनेवाली रत्न राशियोंकी माप नहीं दिला सकती।

प्रेमचन्दजीने जो किया इतना अधिक किया कि वह अपने युगकी जनताके सेवक और कवियोंकी भी प्रतिभा और भावनाकी धारा मोड़नेके लिए बहुत काफ़ी था। सेवासदनमें जितने उपकरण उन्होंने जमाये सब सामाजिक आदर्शोंको लेकर। इतने अधिक और निरंकुश उपकरणके रूपमें व्यक्तिवादको यदि बलवान् नहीं बना दिया तो नारीवादके व्यभिचार की हिन्दी-साहित्यमें नींव अवश्य डाली। यदि उनकी रचना यूरोपमें प्रकाशित होती तो शिक्षाप्रेमियोंके समर्थकोंका एक वर्तमान जमाती जो प्रेमचन्द का अपना समकालीन सैलाब ऊँचीसे ऊँची सतहपर ले जाता किन्तु दुःख यही है कि हिन्दी-संसारमें प्रेमचन्दके चित्रणका आकलन प्रेमचन्दजीकी नारियों और कमज़ोरियों देखनेके प्रदर्शन तक ही आ गया।

अपनी प्रतिभाको पहुँच और आदर्श-चित्रणके अभावमें अपनी कमज़ोरियोंको साहित्यमें अधिकाधिक जैसे वे आगेके लालची लेखक तो उनका अनुकरण किया करते हैं। या तो वे अपनी भाषा चालीसी रंगीनें या तभी ढँगाए अथवा किसीकी शृंगारमयता कि विवेक और विश्वासमें वासनायुक्त दृश्योंमें वह साहित्य ख़ूब चल निकले। प्रेमचन्दजीकी जिन रचनाओंको मैंने पढ़ा है उनमें इस भावनाका कहीं चिह्न नहीं। उनकी

रचनामें धनिकताका मुख्यभाग उसका धन-संचयन नहीं है। चाहे वह धनिकता महलोंके होते हुए भले ही जमीनपर बैठने लगे, मोटरोंके होते हुए भले ही पैदल चलने लगे, पकवानोंके होते हुए भले ही नमकके साथ सूखी रोटी खाने लगे। गरीबोंमें विद्या भ्रम करनेवाले ऐसे उपकरणोंका प्रेमचन्दजीने उपयोग नहीं किया। कौशिकी धनिकताकी प्रशंसा भी प्रेमचन्दकी लेखनीमें नहीं पायी जाती। जातिगत, पेशेगत, विद्यागत, देशागत, कालिकी समस्त धनिकताके मोहजालसे बचनेमें *प्रेमचन्दजीकी* लेखनीको हम चौकन्ना पाते हैं। इसीलिए नेतृत्व और धनिकता दोनोंका ही भारी समर्थन प्रेमचन्दजीके साहित्यमें नहीं मिलता। आदर-पूर्वक व्यक्तिवादिताके दर्शन प्रेमचन्दमें जहाँ होते हैं, वहाँ वे रूढ़ियोंकी सर्वनाशक विषमताका या तो चित्रण करते हैं या रूढ़ियोंके विद्रोहके लिए अपना प्रकाम प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। प्रेमचन्दजीके पात्र सम्पन्न होनेका यत्न करते नहीं देखे जाते, सामनेकी विषम परिस्थितिसे मुक्त होनेका यत्न करते ही देखे जाते हैं। प्रेमचन्दजीने अपने पात्रोंका चित्रण ऐसा किया है कि ग्रामीण जीवनके वर्णनमें उनकी कलम बीन बन जाया करती है।

सच्चा कलाकार मरकर भी नहीं मरता। जो लोग अपने आराधना-बिन्दुसे दया और सहायता माँगते हैं, वे सदैव कमजोर होते हैं, परन्तु जो प्रेरणा माँगते हैं, वे स्वयं भी जीवित रहते हैं और अपने आराधना-बिन्दुको भी युगों तक जीवित रखते हैं। प्रेमचन्द, मुक्त-हास्य-प्रेमचन्द, सहायक प्रेमचन्द, मित्र प्रेमचन्द, विनोदी प्रेमचन्द, मानव मिठासकी गुरमुरी प्रेमचन्द, अपने साथी और स्नेहीकी बलवान् भुजा प्रेमचन्द, उपन्यास पढ़नेवालोंको समाधानकी भोजन देनेवाले प्रेमचन्द चले गये! आँख मूँदनेपर प्रतिक्षण दीख पड़नेवाले प्रेमचन्द, खुली आँखों देखनेकी चीज *नहीं रहे*। प्रेमचन्दजीके उठान अब कलाकी पुस्तक केवल लिखनेवाली देखेगी और उनके द्वारा लिखी जानेवाली स्मृतियोंमें पा सकेंगे। किन्तु जो अमर वस्तु प्रेमचन्दजीके पास थी वह तो प्रेमचन्द अभी भी देनेमें समर्थ हैं। प्रे-

प्रभुको खोकर भक्त प्रभु-वियोगका परम सत्य माननेके लिए तैयार नहीं होता तो प्रेमचन्द-जैसे कलाकारको खोकर हम उसके वियोगको सत्य माननेको कैसे तैयार हो सकते हैं ? जो पोथी हारीं रोता और न जान किस किसकी पूजा करते हैं वे विश्व-साहित्यको सामने रखकर एक बार प्रेमचन्दके साहित्यको फिर देखें। हमारे नम्र विचारसे वे देखेंगे कि प्रेमचन्द दधिचक भक्तों-जैसी स्पष्ट जागृत और आशामय वह वस्तु हिन्दी-जगत् और हिन्दी-जगत्के बाहरकी पीढ़ियोंको भी दे सकते हैं जिसे प्रेरणा कहते हैं। यह प्रेरणा बलवान् और अमर क्रान्तिकारिणी रहे, यही प्रभुसे हमारी एकान्त प्रार्थना है।

पण्डित रविशंकर शुक्ल

प्रजा-सत्तामें बहुमतको अपेक्षा अल्पमतका प्रतिनिधित्व रहता है और इस तरहसे पण्डित रविशंकर शुक्ल मध्यप्रान्तके अल्पमत—बहुमतके प्रतिनिधि हैं। निस्सन्देह यह परम गौरवकी बात है किन्तु चिन्तनकी आँखोंके सामने मध्यस्तर वर्गके पुरुषको इसलिए जन-जीवनमें आये थे कि न परिस्थिति देशकी आवश्यकता और अपनी क्षमताके आर-पार देखनेमें अपनी प्रतिभा रखते थे।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके उपदेशको आधार नहीं चाहिए। व लोग अपनी अवस्था ऐसी बनाये हुए हैं कि अपनी सारी महत्ताओंसे गरजनों के परिणामस्वरूप जिनके पास करनेके लिए कुछ नहीं है केवल गरजनेसे जो पा जाते नहीं उनके लिए काम है। एक समय कमजोर विश्वासके लिए अपमानित होनेका भय होता है।

दूसरे वे होते हैं जिन्हें केवल परिवर्तन चाहिए। परिवर्तनकी अच्छाई बुराई-द्वारा निश्चित भविष्यका जिनके पास कोई ज्ञान नहीं वे तो परिवर्तन करके मानेंगे। तुलसीदासके अनुसार नव अवसंप रस हास्य अर्थात् अमर अथवा मधुर नव शान्ति-संयम साहित्यके नवरस अथवा जगत्‌के पाँच रस और अपनेको अपनेमें छुपाकर बैठनेवाला साहित्य कर्मको अपनेमें छुपाकर बैठनेवाली कविता अथवा इरादोंको अपनेमें छुपाकर बैठनेवाली विचारकी नृप-नीति तुलसीदासकी चारपाई इन सबका कार्य मंगल करना होना आवश्यक है। कुछ तो प्रारम्भसे मंगल-कार्य होना चाहिए, कुछको मंगल-कार्योंकी गौरव-वृद्धि करना चाहिए और शेषको मंगल-परिणामोंकी चाबी होना चाहिए। किन्तु परिवर्तन करनेके हठी भावकको प्रभावके मंगल-कर्मपथसे कुछ लेना-देना नहीं है। अब तो किसी भी

मुल्कपर बलप्रयोगसे परिवर्तन चाहता है भले ही तात्कालिक उससे मंगल हो जाये भले ही वह चिर-अमंगलका कारण बने।

तीसरे व होते हैं जो भावनारहित योजनाके पक्षपाती होते हैं। यद्यपि बड़ीसे-बड़ी देशव्यापी और विश्वव्यापी योजनाको अपनी सफलताके लिए जन-जीवनके सम्मुख बार-बार घुटने टेकने पड़ते हैं और जन-जीवनके सद्भावको आवश्यक बना होता है किन्तु बाहरसे योजनाकी मांग उधार लियेवाला आदमी योजनाका बीमार है। राष्ट्रनायक जवाहरलालजीकी योजनाओंकी अपेक्षा कर योजनाके बीमार अपनी नन्हीं-नन्हीं योजनाओंको ही सब कुछ समझते हैं वे ईमानकी निष्ठा और भावनाकी समयपर-शीघ्रताको भूल जाते हैं।

चौथे वे होते हैं जिन्हें शहीद बनने या शहीद होनेमें मजा आता है। रावणके खिलाफ रामका झण्डा उठे तो वे शहीदोंमें नाम लिखा लेंगे और यदि रामके खिलाफ रावणका झण्डा खड़ा हो तो उन्हें रावणकी सेनामें भी पा सकेंगे। न वे रामके हैं न रावणके। वे तो अपनी शहीद होनेकी प्रवृत्तिके प्रति ही ईमानदार हैं जिस तरह राजनीतिक पार्टी गलीज करनेवाली कलम यदि राज्य अथवा राष्ट्रमें गाली-गलौजकी जगह न मिले तो विदेशी घटनाओंकी गाली-गलौजमें हिस्सा बँटाने लगती है उसी प्रकार शहीदाना जनूनसे भरा हुआ विचारवतान रहित व्यक्ति अपनी शहीदप्रवृत्तिके लिए देश काल और पात्रकी उपयुक्तता-अनुपयुक्तताके लिए नहीं ठहरता।

पाँचवें व लोग हैं जो कभी भी कोई निश्चित निर्णय नहीं कर पाते। उनके लिए यदि रूसके प्रधानमन्त्री बुलगानिन कहते हैं तो ठीक कहते हैं। अमेरिकन राष्ट्रपति आइसनहॉवर कहते हैं तो वे भी ठीक कहते हैं और चर्चिल जवाहरलाल नेहरू कहते हैं तो वह भी हाँ ठीक ही कहते हैं। इस अनिश्चित वृत्तिके लोगोंकी संख्या किसी भी देशके किसी भी समाजमें कम नहीं हुआ करती। जब इनके समर्थन या विरोधके मुताबिक

कार्य करना कठिन होता है।

छठे वे व्यक्ति होते हैं जो परम आज्ञाकारी हैं। उनकी दृष्टिमें जीता हुआ डाकू भगवानका अवतार है और हारा हुआ अवतार डाकूसे भी भयंकर अपराधी। वे यह बहुमत देख ही नहीं कि इसकी भलाई या उसकी बुराई अथवा इसका सम्मान और उसका ताज अपने सिरपर ले बैठें। अत वे निरीह सब अवस्थाओंमें दब जाते हैं। इनके विश्वासके बलपर राष्ट्र-संचालन नहीं होता।

सातवें वे होते हैं जिन्हें केवल क्रान्ति चाहिए। क्रान्ति वह नहीं जो विश्व-रचनाके एक (दूसरेकी अपेक्षा दूसरेको उत्तमतर बनानेका काम करे। इनके लिए तो वही क्रान्ति है जो स्थापित व्यवस्थाके हर कील-काँटेको उखाड़कर फेंक दे। इनका कहना है इनका प्रथम कार्य है कि इनको जिस उसको नष्ट कर चल होते हुए कामको बन्द कर और अमुक समाज रचनाम लगना आरम्भ कर। क्योंकि जन-जीवनका असन्तोष इनका मूलधन होता है और उस असन्तोषको उत्पन्न कर चुकनेके पश्चात् इन्हें समाज या देशसे कुछ लेना-देना नहीं है। विनाशके परम तलपर इन्हें तो अपनी रोटियाँ सेंकनी हैं।

ये सात अवस्थाएँ तथा ऐसी ही कुछ अवस्थाएँ और हैं। कुछ ऐसे समय होते हैं जब समाज-व्यवस्थाका ईमान डाँवाडोल होने लगता है। कभी-कभी राष्ट्र-संचालकको अपने कामसे भय, घबराहट और चिन्ता होने लगती है। समाजके व्यवस्थापक भयभीत, भीरु और दीनतया होने लगते हैं। जब संकट साम्प्रदायिक धार्मिक अथवा विभक्त स्वार्थका विपरीत रूप धारण करके आते हैं तब समाजके प्रजावत्सल नियमन करनेवाले तबका यह भय होने लगता है कि वे जाकरके इन बढ़ते व्यालोंको पीनेमें असमर्थ हैं। सच तो यह है कि कठिनाइयाँ नहीं विजयिनी होती हैं वहीं समूह समाज अथवा व्यक्तिका विकास चमत्कार कर जाता है। ऐसे समयके लिए हमें उन कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता होती है जिनके लिए कहा

गया है,

> नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके,
> जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः ।
> इति महति विरोधे विद्यमाने समाने,
> नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥

ऐसा ही कामकर्ता समाजके हितको अपने हितसे ऊपर रख सकता है। मैं यह कह सकता हूँ कि विरोध अथवा समर्थनकी भूमिका से युवकके पश्चात् पण्डित रविशंकरजी शुक्लको अतिरिक्त सामाजिक विभूतियोंके बीच मैंने कभी डाँवाडोल नहीं देखा। मुझे तो यह चिन्ता है कि समर्थन और विरोधके बीचों-बीच इस निर्भयताके साथ रहनेवाले व्यक्तियोंको मैं अपने बीच इस राज्यमें बहुत कम पा रहा हूँ जो भाई युवकोंकी-सी क्षमता स्थापन कर सकें। कारलाइलके कथनानुसार यदि हम जीवनको ऐसा अवसर मान लें जो दूसरी बार नहीं मिलेगा तो हममें-से कितने हैं जो गुण स्वभाव वस्तुओंको समझनेकी शक्ति और उच्च प्रतिके भास्वर यह कह सकें कि हमारा जीवन समय-धाराके भूले हुए पत्तोंकी ढेरी नहीं, किन्तु यथार्थमें लोग जैसा हुआ प्राणवान् और परम पुरुषार्थमय अस्तित्व है। नन्हें बच्चोंकी तरह यह कहना कि अच्छा अवसर केवल दुःख है अथवा गुण है, अपूर्ण है। यदि भी ऐसी बात करते समय हम वेदान्तकी दुहाई देते हों। किन्तु यह है हमारा निरा बालपन ही। सुख और दुःख तो अगर दार्शनिक सिद्धान्तके अथवा स्थान की आर्थकामी हमारी क्षमता अथवा क्षमता हीनताके नाम हैं। हम भारतीय लोग दार्शनिक दृष्टिकोणमें युवक नहीं हो सकते। हम अपने कार्योंमें अपने विश्वासोंकी असमानताओं लक्ष्य और आदर्शके बीचमें जब स्थान करते हैं तब हम अपनी दृष्टिसे अपने अन्तःकरण और उसके बाहर फैलते हुए अन्धेरेका अनुभव करते हैं। मैं इस बातसे बड़ा सुखी हुआ हूँ कि पण्डित रविशंकर शुक्लमें भगवान्के प्रति अटूट विश्वास है और अपने कार्य-जीवनके प्रति अमित श्रद्धा। वे अधीर

नहीं होते भयभीत नहीं होते वाचाल होते भी प्रायः नहीं देखे जाते।

मेरा परिचय पण्डित रविशंकर शुक्लसे सन् १९१६में हुआ। तब वे बयालीस वर्षके थे। ऐसे कितने ही क्षण आये हैं जब मैं समस्याओंको रविशंकरजीकी दृष्टिसे नहीं देख सका अथवा वे समस्याओंको मेरी दृष्टिसे नहीं देख पाये किन्तु मैंने उनमें ऐसा पारिवारिक व्यक्तित्व पाया जिससे बढ़कर भी जिसके हाथोंमें मनुष्य अपनको अत्यन्त निश्चिन्ततासे सौंप सकता है।

कदाचित् बहुत कम लोग यह जानते हैं कि मध्य प्रदेशके हिन्दी साहित्य सम्मेलनके जन्मदाता पण्डित रविशंकर शुक्ल और उनके तत्कालीन साथी ही हैं। पहला सम्मेलन जहाँ तक मुझे याद है सन् १९१६-१७ में रायपुरमें ही हुआ था जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय पण्डित प्यारेलाल मिश्र बार एट ला हुए थे। पण्डित रविशंकरजीमें दो विरोधी भावनाओंका विचित्र सामंजस्य था। वे सोचते बहुत ठण्डे रहते ठण्डे कि लगभग पन्द्रह वर्षों तक मैं उन्हें उग्र राष्ट्रीय दलका आदमी ही नहीं मानता था। सन् १९२ की सागरमें होनेवाली प्रान्तीय राजनीतिक परिषद्के समय जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय डॉक्टर मुंजे थे मैंने अपने दो प्राणप्रिय मित्रोंको अर्थात् पण्डित रविशंकरजी शुक्ल और स्वर्गीय पण्डित मनोहरकृष्ण गोलवलकरको 'कमजोर' के अग्रलेखोंमें नरम दलका लिखा था। इन अग्रलेखोंको पढ़कर पूज्य पण्डित माधवरावजी सप्रेने मुझसे कहा था 'रविशंकरजीके विषयमें तुम्हें अपना मत बदलना पड़ेगा।

हाँ तो मैं कह रहा था कि रविशंकरजीमें विचारोंकी ठण्डक बहुत थी किन्तु धूमरी और सिपाहीकी बहादुरी भी उनकी ऐसी अद्भुत कि ब्रिटिश सरकारसे लोहा लेते समय जिन्होंने उन्हें अटल और अडिग देखा तथा राजनीतिक परिषदोंके समय और रायपुरमें भी उन्हें तरुणोंकी सेनाका संगठन करते हुए देखा वे उनकी सिपहगिरीका गुणगान किए बिना नहीं रह सकते।

सेवाग्रामकी विभूति मशरूवाला

सत्य और अहिंसाके पथपर आचरणका व्रत लेकर चलनेवालोंमें-से एक तीव्र पांथी और हमारे बीचसे उठ गया। सेवाग्रामकी विभूतियोंका यह वियोग हमारे सम्मुख क्रमागत-सा हो गया है। सत्पुरुष जमनालालजी बजाज, श्री महादेव भाई देसाई, माता कस्तूरबा, महात्मा गान्धी और भाई श्री किशोरलाल मशरूवाला इस तरह सन् ४२ से लेकर सन् १९५२ तक हमने सेवाग्रामकी पाँच विभूतियाँ खोदीं और सेवाग्रामकी अन्तरंगकी इन पाँच विभूतियोंके सिवा सेवाग्रामके बहिरंगकी एक महान् विभूति सरदार वल्लभभाई पटेलको हमने खोया। किसी राष्ट्रके जीवनकी हानि-लाभकी भाषामें हमारी ये हानियाँ अत्यन्त भयंकर हैं।

महात्मा गान्धीने मशरूवालाजीका परिचय इन शब्दोंमें दिया था "किशोरलाल हमारे दुर्लभ कार्यकर्ताओंमें-से एक हैं। न थकनेवाले वे अपनी भूलोंके प्रति बड़े सजग हैं। जाति, समाज और प्रान्तीयताके अभिमानसे मुक्त व स्वतन्त्र विचारक हैं। वे राजनीतिज्ञ नहीं किन्तु जन्मसे सुधारवादी हैं। वे सच्चे धर्मोंके जिज्ञासु हैं। अपना अहंभावसे वे सर्वथा मुक्त हैं। प्रलोभन प्रशंसा और उत्तरदायित्व लेनेसे सदा बचनेवाले किन्तु एक बार कोई दूसरा आदमी मुश्किलसे मिलता था उत्तरदायित्व ले लेनेके पश्चात् उसे वैसा निबाहता हो जैसा मशरूवाला निबाहते हैं। 'पत्रिका' का यह कहना सच है कि जब हमारे पास स्वराज्य पानेकी एक ही समस्या थी तब इन दुर्लभ कार्यकर्ताओंकी परम आवश्यकता थी। अब स्वतन्त्रताके बाद समस्याओंके पहाड़ हमपर टूट पड़े हों तब किशोरलाल भाईका हमारे बीचसे जाना बहुत बड़ा संकट है।

विषम संकटके दिन हैं ये। क्योंकि देश चौराहेपर खड़ा है जहाँ

मुद्राकी बाजार-दर बढ़ गयी है, पायी हुई स्वतन्त्रताकी बाजार-दर घट गयी है। पेटके ऊपर हृदय और सिर रखकर चलनेवाला भारतीय मानव मानो हृदय और सिरपर पेट रखकर चल रहा है। खाद्य पदार्थोंकी बाजार-दर बढ़ी हुई है और चरित्रकी बाजार-दर गिर गयी है। हमारे श्रमकी कायरताका रूप यह है कि भूमि हम लाखों एकड़ उससे अधिक जोतने लगे हैं, जितनी कि हम सन् ४० या सन् ४१ के पहले जोतते थे किन्तु अनाज उससे कम पैदा करते हैं, जितना सन् ४१ के पहले कम भूमिमें पैदा किया करते थे। सेवाग्रामके पन्थियोंकी ये फिर चिन्ताएँ विनोबा और जवाहरलाल दोनोंके संकट बढ़ाती हैं और दोनोंके कन्धोंका बोझ भारी कर देती हैं।

संस्थाएँ जो एक दिन स्वराज्यके पथमें अहिंसापन्थियोंकी शक्ति बढ़ाया करती और देशको नये-नये नवीन प्रेरणाएँ प्रदान किया करती थीं आज रजिस्टर, भवन और अपने इलाके गुमाश्तोंकी गिनती करानेका जरिया बन गयी हैं। जब हमारी संस्थाएँ अच्छे मकान, चमकती दुकान, पैसेका कारबार और कार्यकर्ताओं व महात्माके बोर्डिंग-हाउस बनकर दान-धनके या [illegible] हो गयी हैं। श्री मशरूवाला जहाँ एक तरफ सर्वोत्तम शक्ति लेकर कभी-कभी शासन और हमारी संस्थाओंकी आलोचनाएँ किया करते थे, वहीं वे जनताका मनोबल दृढ़ किये रहनेके लिए शासन और कांग्रेसके प्रति जनताके सहयोगका मूल्य समझाते रहते थे।

हमारे देशके कुछ लोग चीन जाते, रूस जाते, जापान जाते, इंग्लैण्ड जाते। सेवाग्रामके भीतर तथा सेवाग्रामके बाहरके इन विदेश-यात्रियोंपर विदेशोंके ऐसे क्रूर प्रभाव पड़ते कि ये मानो यदि पश्चिमी देशोंके रंगमें रंगकर आते और पूरबके देशोंकी जमघटमें गहराते तो चीनी या रूसी जनगणनाके बनकर लौट आते। ऐसे समय स्थिर बुद्धियोगसे राष्ट्रका परिचालन करनेवाले श्री किशोरलाल भाई जैसे नायकका हमारे बीचसे उठ जाना

निस्सन्देह हमारे लिए बड़ी हानिकी बात है। यदि संस्थाओंके नायकों और उपनायकोंमें आप बैठें तो वे बस बात करते दीख पड़ेंगे — इसपर जुर्माना करो, उसे दण्ड दो, इसपर नजर रखो, उसपर पहरा दो। मानो पाँच वर्ष पहले जो सब-जजसाहबका अधिकारी था, आज वह कान्स्टेबलों-द्वारा घेरे जानेकी वस्तु हो गया है। मशरूवालाजी चूँकि मानवताकी श्रेष्ठतामें विश्वास करते थे, अतः कार्यकर्ताओंकी श्रेष्ठताका उपयोग, उसे आमन्त्रित करने और उसका पथ-प्रदर्शन करनेमें कभी नहीं चूकते थे। सर्वोदयकी मान्यताने देशमें जितने श्रेष्ठ कार्यकर्ताओंका निर्माण किया, उनकी दो ही आधार दिखाए हैं—गुणोंकी कोमलता, अभिनन्दन और जीवनका कठोरतर आत्म-निरीक्षण। हम आज क्यों नहीं समझते कि कड़े कानून और भयंकर झिड़कियाँ कभी किसीके जीवनमें देवत्वको जन्म नहीं दे सकतीं। ईमानदार रहकर श्रम करना और भाई मानकर श्रम और संकटमें साझीदार होना ही हमारा बल बढ़ा सकता है।

जिस अन्तर्राष्ट्रीयताकी न जाने हम कितनी चर्चा करते हैं, उस नवीन अन्तर्राष्ट्रीयताका जन्म भी सेवाग्रामकी भूमिमें हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीयताकी पूना और पूनाकी अन्तर्राष्ट्रीयता संसारने हमें सिखा दी, किन्तु जाति और धर्मोंसे पर स्नेहकी भावना हम सेवाग्रामकी पाठशालाने सिखायी। सिखाता ऐसा सिखाता एक महान् साधक, एक महान् नायक हमारे बीचसे उठ गया।

उन्हें खोकर हमने बहुत खो दिया। वे वर्षोंसे भयंकर बीमार रहे, किन्तु ऐसा लगता है मानो उनकी समस्याओंके सुलझाव जिम्मेका अत्यधिक बोझ अपने सिरपर लेकर अधिक काम करते-करते उन्होंने अपनेको मार डाला। यदि हम अनुभव कर सकें कि हमने भाई किशोरलालजी मशरूवालाको खोकर बहुत खो दिया है तो शीघ्र ही प्रगतिशील भारतवासियों की ऐसी श्रद्धा और स्नेह भरी पीढ़ी तैयार होनी चाहिए जो अपने जीवनमें मानवके पुरुषार्थसे 'हाँ' कहलाने और उसे अनन्त हितकारी बनानेका बल रखती हो। किन्तु साथ ही प्रगतिशील अनिवार्य राष्ट्रों, समाजों, भावियों

और सामन्तोंसे पतन-प्रवृत्तिमें निर्विकार 'माँ' कहनेकी अनन्त श्रद्धामयी शक्ति भी अपनेमें रखती हो। सर्वोदयका मन्त्र और गान्धीवादकी अनन्त समता भारतीय स्वतन्त्रताके स्तम्भोंसे माँग करती है कि भाई मधुबालाजी की समाधिपर बैठकर हम अपने युगकी राजनीति और स्वराज्य-संचालनमें अनन्त चरित्र निर्माण कर सकें।



राष्ट्रसेवक डॉक्टर अन्सारी

'डॉक्टर अन्सारीकी मृत्यु (राष्ट्रको) मूर्छित कर देनेवाला आघात है।' महात्माजीने डॉक्टर अन्सारीके अकस्मात् अवसानपर इन शब्दोंमें अपनी भावनाएँ व्यक्त की थीं। ८ मईको डॉक्टर अन्सारी रामपुरके नवाबके यहाँ मरीजोंको देखने मसूरी गये। दिन-भर वे रोगियोंकी देख भालमें व्यस्त रहे। इस थका देनेवाले श्रमने उनके टूटे हुए स्वास्थ्यपर घातक प्रहार किया। ९ की रातको जब वे मसूरीसे देहरादून एक्सप्रेसपर दिल्ली लौट रहे थे तब बीचमें ही चैनपुरखौल स्टेशनपर, साढ़े बारह बजे रातको हृदयकी गति रुक जानेसे महात्माजीके शब्दोंमें हकीमोंका मसीहा अन्सारी जिसकी गोदमें महात्माजी अपनेको 'सुरक्षित' समझते थे चल बसा। महात्मा गान्धी डॉक्टर अन्सारीको हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर अपना 'रहनुमा' मानते थे। रहनुमा ऐसा सच्चा — 'जो कभी धोखा नहीं करता था'। अपने इस 'पथप्रदर्शक' के साथ मिलकर महात्मा जी राष्ट्रकी बढ़ती हुई सामाजिक बुराइयोंपर आक्रमणकी तैयारियाँ" कर रहे थे किन्तु

'आख़िरश क़ौम की
क़िस्मत का कंगूरा टूटा
मौत का कुछ न गया
भाग हमारा फूटा'

तैयारियाँ धरी रह गयीं अकस्मात् आँखें मूँद गये राष्ट्रको आँसुओंमें भिगोकर अन्सारी उसकी गोद खाली कर चला।

डॉक्टर अन्सारी वह रत्न थे जिनके सार्वजनिक जीवनमें कभी शिथिलता नहीं आयी। उनका सार्वजनिक सेवाका जीवन सन् १९११ ई।

से प्रारम्भ होता है। विलायतकी शिक्षा समाप्त कर वे भारत आये ही थे कि टर्की-बाल्कन युद्धके अवसरपर अखिल भारतीय मेडिकल मिशनके अध्यक्ष होकर उन्हें टर्की जाना पड़ा। इस मिशनका काम इतना सफल और सन्तोषप्रद हुआ कि टर्कीके सुल्तानने डॉक्टर अन्सारीको किसी भी विदेशीको दिये जानेवाले सर्वश्रेष्ठ सम्मानसे सम्मानित किया। आज भी उन अमर सेवाओंको याद कर टर्की डॉक्टर अन्सारी, उनके देश और भारतके सामने कृतज्ञतावश नतमस्तक है।

अन्सारीके राष्ट्र-प्रेम और सेवाकी लगनने अपने पाँवके नीचे कभी असावधानीकी दूब नहीं जमने दी। अनुभवके साथ वह निखरी। उनकी रफ्तारके साथ उसमें वह गम्भीरता उतरी जिसने भटकावोंकी ओट लेकर कभी भी अपनेको गुमराह न होने दिया। साथ ही वह इतनी विशाल बनी कि राष्ट्रके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंको भी उसने सफलतापूर्वक अपनाया।

भारतीय राजनीतिमें डॉक्टर अन्सारीका प्रभावशाली प्रवेश सन् १९१८ में हुआ। दिल्लीमें राष्ट्रीय महासभाके अधिवेशनके साथ अखिल भारतीय मुस्लिम लीगका अधिवेशन हुआ। डॉक्टर अन्सारी उसके स्वागताध्यक्ष बनाये गये। उस समयके कांग्रेस और मुस्लिम लीगमें दिये गये भाषणोंमें अकेले डॉक्टर अन्सारीके स्वागत भाषणको ही सरकार-द्वारा जब्त होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी वर्ष आप अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके ज्वाइण्ट सेक्रेटरी चुने गये। इस प्रकार आप सन् १९२७ तक—जब तक कि वे स्वयं कांग्रेसके सभापति न हो गये—रहे।

सन् १९२७ की मद्रासकी बयालिसवीं कांग्रेसने भारतीय महत्त्वाकांक्षाओंकी भागीरथीको विश्वके सामने उज्ज्वल और यथार्थ रूपमें प्रकट होनेका अवसर दिया। उसके पहले तक हम साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य का कायर मन्त्र पाठ करके अपनेको आनेवाली पीढ़ियोंके उपहासका साधन बना रहे थे। मद्रासमें हमने इस नपुंसक मनोवृत्तिका त्याग कर घोषित किया कि हमारा लक्ष्य मुकम्मिल आजादी—पूर्ण स्वराज्य—है, उससे कम कुछ नहीं।

पूर्ण स्वराज्यका यह मर्यादित प्रस्ताव उसी 'राष्ट्रीय मुसलमान' डॉक्टर अन्सारीके नेतृत्वमें स्वीकृत हुआ जिसकी निगाह हिन्दू और मुसलमानके भेदसे सदा पाक रही और अपने जीवनकी अन्तिम घड़ियों तक जिसके हृदयमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नको सुलझानेकी तड़पन मौजूद रही।

सन् १९३ में कांग्रेसके डिक्टेटरकी हैसियतसे डॉक्टर अन्सारी अपनी वर्किङ् कमेटीके साथ गिरफ्तार कर लिये गये। इसके बाद गान्धी-इरविन समझौता हुआ जिसमें डॉक्टर अन्सारीका बहुत बड़ा हाथ था।

सन् १९३४ में कांग्रेसने व्यवस्थापिका सभाओंपर कब्जा करनेका निश्चय किया। उसके लिए जो पार्लमेण्टरी बोर्ड बना उसके सभापति भी आप ही चुने गये। नेहरू रिपोर्ट तैयार करनेमें डॉक्टर अन्सारीका जो महत्त्वपूर्ण सहयोग था उसका परिचय तब मिला जब लाहौरकी कांग्रेस-द्वारा रिपोर्ट अस्वीकृत करार दिये जानेके बाद कुछ मित्र डॉक्टर साहबको यह खबर देने पहुँचे कि हमने आपकी रिपोर्टको रावीकी तरंगोंके साथ बहा दिया।

सन् १९२ से लगाकर सन् १९३६ के अपने जीवनके अन्तिम दिनों तक वे बराबर कांग्रेसके साथ रहे। ऊपरके विवरणोंसे स्पष्ट है कि इस अवधि में कोई भी ऐसा राजनीतिक महत्त्वका काम नहीं हुआ जिसमें डॉक्टर अन्सारी दाहिने या बायें हाथ न रहे हों। वे प्रान्तीय नेता थे राष्ट्रीय नेता थे और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व भी उनका कम न था। आजकी उलझीली परिस्थितियोंमें राष्ट्रनायक डॉक्टर अन्सारीको खोकर राष्ट्रकी चेतना जब खूब आहत हो उठी है।

मैं आगेका जय-जयकार

मद्दय मैथिलीशरणजी गुप्तकी कविता सर्वप्रथम मैंने १९०७ में पढ़ी। उस समय मैं गाँवसे नया-नया ही कलकत्ता आया था। कलकत्ता म्युनिसिपल्टीके कैशियर मेरे मित्र श्रीतोताराम पारनीक 'सरस्वती' मासिक पत्रिका मँगवाते थे। उन दिनों स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी-द्वारा सम्पादित इण्डियन प्रेसकी प्रधान पत्रिका 'सरस्वती' में गुप्तजीकी कविताएँ प्रकाशित हुआ करती थीं। स्वर्गीय श्री जगन्नाथप्रसादजी 'भानु' कविके कार्यालयके कुछ मित्र तथा पारनीकजी 'सरस्वती' लेकर बैठते और व्रजभाषासे छूटकर बिलकुल नवीन रूपमें आनेवाली हिन्दी कविताका रसास्वादन करते। उन दिनों गुप्तजीकी कविता नवीन तरुणोंकी वाणीका भूषण थी। केवल किसी एक पुस्तककी कविता ही लोगोंके मनको मोहती हो ऐसी बात नहीं, प्रत्येक पुस्तक हिन्दीमें बहुत सम्मान, सद्भाव और लोभके साथ पढ़ी जाती। जयद्रथवध, रंगमें भंग और गुप्तजीकी फुटकर कविताएँ लोगोंको बहुत भातीं। मानो व्रजभाषाके माधुर्य और प्रभुत्वके सामने लोग खड़ी बोलीमें लिखी हुई हिन्दी कविताकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे।

उन दिनों स्वर्गीय श्री श्रीधर पाठक, स्वर्गीय राय देवीप्रसाद पूर्ण, स्वर्गीय श्री कामताप्रसादजी गुरु और प्रतिभा-पुरुष नाथूरामजी 'शंकर' शर्माकी कविताओंकी विशेष धूम थी, किन्तु ये पुरुष व्रजभाषामें भी कविता लिखते थे और खड़ी बोलीमें भी। खड़ी बोली और केवल खड़ी बोलीमें कविता लिखकर निर्भीकतापूर्वक किन्तु अत्यन्त नम्रतासे खड़े रहनेवाले एक मात्र गुप्तजी ही थे। जिस समय 'भारत भारती' निकली उस समय तो जैसे राजनीतिक और सामाजिक विचारधारामें एक तूफान आ गया। सभा-मंचोंपर वक्ता 'भारत-भारती'के उद्धरण रखना

उपयोग करते मानो उनके कहनेकी सामग्रीके शीर्षक और प्राण केवल हिन्दीकी काव्य पुस्तक 'भारत भारती' में ही हैं। उन दिनोंका शायद ही कोई हिन्दी समाचारपत्र हो जिसने गुप्तजी और उनकी कविता तथा 'भारत-भारती' की प्रशंसा न की हो। जब यह पुस्तक निकली तब गुप्तजीके और हिन्दी जगत्के आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने शिष्य गुप्तजीकी प्रशस्तिमें सरस्वतीमें कदाचित् वसन्ततिलका वृत्तमें एक छन्द लिख डाला जिसकी अन्तिम पंक्ति थी

"श्रीमैथिलीशरणगुप्त उदारवृत्त।"

यों आचार्य द्विवेदीजीसे प्रशंसा पा लेना उस युगमें अथवा उनके पीछे भी अत्यन्त कठिन काम था किन्तु गुप्तजीको द्विवेदीजीका परम आशीर्वाद प्राप्त था। द्विवेदीजीने गुप्तजीको अपने युगके प्रति अत्यन्त ईमानदार और आमुख पाया और लगा कि उन्हें वह चीज प्राप्त हो गयी जिसकी वे हिन्दीमें आवश्यकता अनुभव करते थे।

मैंने मैथिलीशरणजीकी कोई रचना उस युगमें आज तक ऐसी नहीं पढ़ी जिसमें व्रजभाषाका उपयोग हुआ हो। केवल उनकी बोलचालपरक रचनामें उन्होंने यह कहलाया है

दब मति जाय मेरा बारो कान्ह भारो हाथ
तू भी दे सहारो सखि शैल बड़ो भारी है।

आज जिस क्रान्तियुगमें हम विचरण कर रहे हैं उसकी प्रारम्भिक जड़ मैथिलीशरणजी गुप्तकी लेखनीमें पड़ी। सच पूछा जाय तो युग उनके कन्धोंपर बैठकर आज इतनी दूर आया है। युगके प्रारम्भमें ही उन्होंने शृंगारकी कविताको जिसकी हर सुधारक भर्त्सना किया करता था डाटकर कहा

जिस चन्द्रवदन की चटक नहीं हो जिसमें
नागिन-सी लट की लटक नहीं हो जिसमें
भ्रू और दृगों की मटक नहीं हो जिसमें

मन्मथ-महीप का कण्टक नहीं हो जिसमें
उसको कविता ही नहीं आप बतलाते
कविराज आपके चरित न जाने जाते।

यह पूरी कविता जब 'सरस्वती' में छपी तो लोग गली-कूचोंमें इसे मस्त होकर गुनगुनाते और गुप्तजीको देखनेके लिए तरसते।

राजनीतिकी किसी महत्त्वाकांक्षाके दास न होनेके कारण गुप्तजी साहित्य-सृजनमें लगातार लगे रहे और आज तक लगे हैं किन्तु रचनाओंकी प्रखरताओंके कारण वे शासनप्रिय बनकर नहीं रह सकते थे। यहाँतक कि भारत भारतीके अन्तमें वर्णित शोकगीतके कारण तो झाँसीकी पुलिस और झाँसीके कलेक्टर भड़क गये और गुप्तजीको कारावासमें भिजवा दिया।

जब स्वर्गीय गणेशशंकरजी विद्यार्थीने कानपुरसे 'प्रताप' प्रकाशित किया तब उसमें समय-समयपर गुप्तजीकी कविताके वर्मेल गीत। 'प्रताप' के प्रथम विशेषांकके मुखपृष्ठपर दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रह-आन्दोलन चलानेवाले कर्मवीर मोहनदास करमचन्द गान्धीके नामसे उस समय विख्यात महात्मा गान्धीकी प्रशस्तिमें गुप्तजीकी जो कविता प्रकाशित हुई वह मानो हिन्दी जगत्‌की तरुणाईकी नस-नसमें रम गयी। मेरे लिए तो उस समय गुप्तजी सब कुछ थे। वे प्रेरक थे, मार्गदर्शक थे और क्या नहीं थे!

उस समय मैं तुकबन्दियाँ लिखने लग गया था किन्तु वातावरणकी रुचिके अनुकूल ब्रजभाषामें ही लिखता था। गुप्तजीका नया पथ मुझे बहुत भाया और यद्यपि मेरी और उनकी उम्रमें दो-तीन वर्षोंका ही अन्तर होगा मेरे लिए वे सदैव ही श्रद्धाकी वस्तु रहे हैं।

मैंने प्रथम बार मैथिलीशरणजी गुप्तको लखनऊकी कांग्रेसमें देखा। यों उससे पहले मैं स्वर्गीय भाई गणेशशंकरजीसे स्वर्गीय पं॰ महावीरप्रसादजी द्विवेदीसे तथा अन्य कुछ मित्रोंसे भी उनके विषयमें बहुत कुछ सुन चुका था। गणेशजीको दो-तीन वर्ष पहले मैं लखनऊके हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें देख चुका था। जब मैंने गुप्तजीको लखनऊ कांग्रेसके समय देखा

तब मुझे याद पड़ता है कि स्वर्गीय गणेशशंकरजी विद्यार्थी स्वर्गीय शिवनारायणजी मिश्र स्वर्गीय श्रीनाथजी भट्ट स्वर्गीय शालिग्रामजी वर्मा स्वर्गीय अध्यापक रामरत्नजी और विद्युत उपन्यासकार श्रीयुत वृन्दावनलालजी वर्मा उनके साथ थे। गुप्तजी उस समय काला साग बाँधे हुए थे। लोक-जीवनकी सरलताने मुझे दो ही बार चौंकके झटके दिये हैं। एक बार गुप्तजीको आवरण खद्दर पाकर और एक बार कुसुमी टोपी घुटने तक धोती तथा सिकुड़ी हुई सूती मिरजई पहने हुए स्वर्गीय कवि सत्यनारायणजीको भाई बनारसीदासजी चतुर्वेदीजीके साथ देखकर। उस समय राजनीति पर मस्तिष्क केन्द्रित ब्रिटिश-युगके शासकी अफसरोंके गाड़े छिपाकर जीवन बिताना ही चोरों और बटमारोंके सिवाय क्रान्तिकारियोंका पेशा हो रहा था। ऐसे समय प्रताप का काम मानो आगकी अवस्था अभिशापका काम था और गुप्तजीका उस परिवारमें सम्मिलित रहना नयी पारिवारिकता-का अत्यन्त उल्लसलक्षण था।

मैं जब भारतेन्दु-युगसे आज तकके हिन्दी काव्यके मोड़ोंके मोड़ गिनाने बैठता हूँ तब भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके पश्चात् मुझे ऊँचाईपर मैथिलीशरणजी खड़े दिखायी देते हैं। यों ब्रजभाषा छोड़नेके साथ हिन्दीने रस और माधुर्यका इतना बड़ा खजाना छोड़ दिया है कि हमारे मार्मिक सारे प्रयत्नोंके बावजूद भी अभी हिन्दी कविता रस राग अनुभूति आनन्द और समर्पण-में प्राचीन कविताके पास नहीं पहुँच पायी। हमारी शोभा इसीमें है कि हम इस तथ्यको पचास वर्षके पश्चात् नम्रतापूर्वक स्वीकार करें और गर्वपूर्वक आगे आनेवाली पीढ़ियोंको अपनी सीमा रेखाका ज्ञान करायें। उपमा अलंकार मुहावरे कल्पनामें युत हम सबमें जो एक आनन्द-सर्वेक्षक युवक है उस तरह पहुँचनेमें सफल मौलिकताके बावजूद भी हमारा रस और राग मानो पराजित-सा हो रहा है। मानो हिन्दीके बीते-भारी दर्शनोंका बोझा छोटे-छोटे पीढ़ियोंमें यह सम्पदता ही नहीं आ रही जो उनकी उन्नत मस्तियोंके साथ साम्यता स्थापित कर सके। एक पीढ़ीने शृंगार किया

और पढ़ी हुई रचनाओंमें यदि रीतिकालकी कविताकी भर्त्सना की तो उसके साथ-ही-साथ अपनी काव्यकलामें शृंगारकी ऐसी झाड़ें मारीं कि यह पहचानना कठिन हो गया कि बस और समयकी कमियोंके सिवाय रीतिकालीन कवितामें और दोष ही क्या था। किन्तु तिरस्कारमें या उपेक्षामें यदि या तटस्थतामें रीढ़में या अध्ययनमें हिन्दीमें जब जो कुछ भी कहा गया ऐसा लगा मानो गुप्तजीका धीर उनकी सहिष्णुता और उनका उत्साह-भाव अपनी पीढ़ियोंका पूरक-तन्तु बनकर अमर है।

अपनी इस युवकमित्रोंका जो भी मोह मुझमें विद्यमान था उसे बड़ी बालीकी और मौलानेका सम्पूर्ण श्रेय भी मैथिलीशरणजी गुप्तको है। यद्यपि मेरा व्यापक उनको परम श्रद्धासे देखकर भी थोड़ी-थोड़ी मुझमें विरक्तिमें सदैव सियारामशरणजीकी कविताके साथ रहता आया हूँ। गुप्तजीका कविता-के व्यक्तिको सांसारिक व्यक्तिके अनुभवात्मके साथ नहीं तौला। वे अपनी आत्मा तथा वृत्तिमें इतने सफल रहे कि अपनी रचनामें सदैव पाप्मेय और पूजा भावना प्रदान करनेवाले व्यक्तियों वस्तुओं और मर्यादाओंके प्रति ही अपने अपनेको व्यक्त किया। भी रामके प्रति उनका स्नेह इतना व्याप्त हो गया है कि युगके युवक होकर भी यह मानते हैं कि जीवनको धर्मके प्रति ईमानदार रखनेमें उनको अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। ब्रिटिश-युगका काव्य-प्रवाह जब सिकुड़ा पर रहा था रीतिकालीन युगके हिन्दी काव्य पथराया-सा गया था और जब काव्यके नामपर रति-विलासके कुम्भीपाक नरकोंका निर्माण काव्यकला कहा जाता था तब जिस व्यक्तिने अपनी मिथ्रकोंकी धारा भी डाँवाडोल नहीं होने दिया उसे मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं। राजनीतिज्ञोंके आन्दोलनोंसे पहुँच चाहे जैसी होती हो पर वे धर्म और साहित्यमें नहीं जाते किन्तु "सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान" के प्रशस्त पथको तुलसी दिखाते रहे। मैं उस रचनाकारकी सदैव प्रशंसा करता रहा हूँ जो अपनी रचनाओंका पथ नहीं बदलता। पथ न बदलनेवाले रचनाकारोंकी पीढ़ियोंसे सौरभान्वित कल्पनाके कुछ लोग

गुप्तजीके पश्चात् हिन्दीमें हुए हैं और उनकी कवि पताकोत्तर ही नहीं वर दान मैं प्रभुसे माँगता हूँ।

अब बात तो यह है कि यह मोह निरा बचपन है कि हिन्दी कविता सदैव एक ही डगरपर चलती रहे। इन्द्रधनुषके रंगोंकी तरह ऋतु ऋतुके पुष्पोंकी तरह आती-जाती ऋतुओंकी तरह हिन्दीका मौलिक रंग क्यों न बिखरे क्यों न फूले क्यों न फले? परिवर्तन न केवल भारतवर्षमें किन्तु विश्व-भरमें आया हुआ है और नया युग उसका स्वागत कर रहा है। शुभ है। किन्तु हमें यह सावधानी कैसी होगी कि विश्वकी गुत्थी गाँठकर हम जिसको उपहार देकर स्वांग न करने लगें। भारतवर्षकी और एशियाकी मौलिक भावना बलिदान और समर्पण है। जिसका कोई देश मात्र कालके लिए मायूस रखको इन दो भुजाओंपर खड़ा नहीं रखता। अब बुद्धजयन्ती का उत्सव और १८५७ के विद्रोहका उत्सव एक ही वर्षमें साथ-साथ मनानेवाले भारतवर्षके युवकोंसे यह आशा करनी चाहिए कि भाषा कि विविधता वैमनस्य नहीं है विभिन्नता कारण विद्रोह नहीं है। एक-सा उत्साह भी अनेक रसोंका आरोप हो सकता है अनेक भाव आ सकते हैं। पृथ्वीसे लगाकर आकाश तक समस्याओंकी जो देनें आनन्द निष्ठुर सत्य और कल्पनाको लेकर मचलती रही हैं उनके आगे बढ़ने चलनेमें बोलनेकी लगनकी सामर्थ्य किसीमें नहीं होगी किन्तु हम यह न भूलें कि किसी पदोंर स्वा-मित्वसे भी हम बँधे हुए हैं इस नाते। हम बोलकी जिह्वामें ही हैं देखने आँखोंमें ही हैं सुनने कानोंमें ही हैं। इसके न आकारसे हमारी मौलिक इच्छा बन पाती है और न प्रकारसे। अतः आगे बढ़ता हुआ युग अपने ही युगोंको ओर उनके मूल्योंका आदर करता हुआ आगे बढ़े। यों गुप्तजीका व्यक्तित्व तो इतना नम्र है कि कसमसाकर चलती हुई समस्त नवीन पीढ़ी का योगे आगे लगातार जीवित पदोंमें व यह कहकर स्वागत करते हैं कि

'जो पीछे आ रह उन्हीं का, मैं आगे का जय-जयकार!'

०

श्रीयुत रामचन्द्र शुक्ल

वह लकीरें नहीं खींचता साहित्यिक युगपर अपनी लकीर खींचता । वह स्वर नहीं उधार लिखता । उसकी लेखनी श्यामघन बनकर साहित्य की क्यारी-क्यारियोंपर बरस रही है । वह किसी पथपर चलनेके लिए आँख नहीं मूँदता किसी विचारके मस्तकपर साहित्य बनकर उतरनेके समय आँख मूँदता । उसकी कलम लिखती उसकी कलम बोलती । वह हिन्दी साहित्यका संयमशील स्वर है उसकी बात राष्ट्रभारतीका पुष्टिकर व्यंजन है, उसमें साहित्यके सजीव निर्माणकी प्रबोधमयी मात्रा है । उसका आदर्श उसकी लिखावटमें छुपकर रहे क्या बना देता है । साहित्यिक जगतपर प्रकाश पहुँचाना उन्नतसे मस्तक ऊँचा रखना तरंगायी मरजीवर न झुकने लहरोंके उन्मादमें नौकाकी तरह न हिलना-डुलने सागरके ज्वार में पहाड़ी बेड़ोंकी तरह प्रत्येक साहित्यिक परम विवादमें भी उसकी सन्धि का अधिकारी है । वह राष्ट्रभारतीके गौरवका उज्ज्वल चरण संयमशीला सरस्वतीका पदविन्यास और साहित्यकी आवश्यकताका करुण मोल है ।

जयशंकर प्रसाद

स्व० श्री जयशंकर प्रसाद उन कवियोंमें हैं जो सदैव अमर हैं । न वे मर सकते हैं न उन्हें कभी मारा ही जा सकता है । जिन भावोंपर, जिन भूतकालीन भावोंपर प्रसाद अपनी रचना किया करते थे वे सारे आज भी वास्तव हैं और प्रसादका पार्थिव शरीर नहीं भी रहे किन्तु वे ही सारे प्रसादके यश-शरीरसे लिपटकर अलौकिक फैल जाते हैं जहाँतक प्रसादको पढ़ने और समझनेकी ललक और लालसा है ।

बताते हैं अंग्रेजीके सुप्रसिद्ध व्यंग्य नाटककार और विश्वके श्रेष्ठ चरित्र चित्रक बर्नार्ड शॉने एक बार शिकायत की कि मेरी रचनाओंको शिक्षा संस्थाओंमें ले जाकर अध्यापकोंने मुझे विद्यार्थियोंमें अप्रिय बना दिया । किन्तु कारण हो या कहनेका सलीका कथन-शैली हो या कथन स्वयं काव्यका शरीर हो अथवा उसकी आत्मा प्रसादकी कविताओंमें काव्य और सत्य ऐसे घुल-मिलकर बैठे हैं कि विद्यार्थियोंके बोध भी उन्हें अप्रिय नहीं बनाया जा सकता । प्रसादकी पोथी प्रसादकी रचनामें अपने [illegible] स्तरपर उसी प्रकार शृंगार करती है जिस प्रकार सौन्दर्य पार्थिव नारी दर्पणके सामने उपस्थित होकर अपनेको सँवारने लगता है । प्रसादका काव्य इसलिए युग-युग अमर है क्योंकि युगों उसे सँवारते हैं । कल्पनाकी परिकल्पना बुद्धिको भोजन देती चलती है और वह निगूढ़ तत्त्वोंको भी इतनी सरलतासे कहती है कि उसका बहुत बड़ा अंश पाठकके पल्ले पड़ जाता है । [illegible] उन सिद्धान्तोंके कवियोंकी तरह प्रसादकी रचनाओंके साथ जाकर वह जानी है कि हानि-लाभ जीवन-मरण और [illegible] वह है सीमा रेखा उनके बोध नहीं खींचे जा सकते । कामायनीके कथन और स्पर्श तथा उनकी अन्य कृतियोंके युग पौराणिक कथानकोंके बीचमें जो दूरी है वह ऐसी जो

जाती है कि उनका नल और उनकी दमयन्ती उनका शंकर और उनकी पार्वती उनकी शकुन्तला उनका दुष्यन्त मानो अपने इतिहास और पुण्य स्थलोंके लोकसे उतर-उतरकर वाणीके इस वरद-पुत्रके कल्पनामें समा-से गये हैं। महाभारत और रामायणके इनके रूप और कालिदासके द्वारा दिखाये गये इनके रूपमें इन दो रूपोंमें जन-जीवन कालिदासके दिखाये रूपोंपर ही अधिक आसक्त होता है। प्रसादकी भी वाणीको ग्रहण और उसके कथा-पुरुषोंकी रूढ़िके मूल्यांकनको लोग स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हैं। उन कथानकोंके विषयमें मूल ग्रन्थोंमें क्या कहा गया है, इसकी अपेक्षा लोग इसी बातपर अधिक आनन्दित होते हैं कि प्रसाद उसे किस प्रकार कहते हैं। ऐसे समय लोग सुनना चाहें या न सुनना चाहें तो भी यह कहना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रसादको समझनेके लिए समझकी चढ़ावकी सीढ़ियाँ सुरक्षित रहें।

अत यह आवश्यक है कि हम प्राचीन रस-सिद्ध कवियोंकी तरह प्रसादके कृतित्वको पीढ़ियोंमें अत्यधिक समादृत बनानेके लिए व्याकरण व्याख्या और कोष-निर्माण-द्वारा उचित लोकसेवा करते जायें जिससे अकाल कुमार और जन-साधारणकी श्रेणियोंमें जब लोकरुचि प्रसादके कथनपर आसक्त हो तब यह हमारी भी अज्ञानकी बात मानकर न रह जाये वह प्रसादकी रचनाके कण-कण और सब-कणका मर्म समझ सके।

प्रसादसे मेरे परिचयकी बात यदि आपसे कहूँ तो शायद आप हँसेंगे। सन् १९११ में कलकत्तासे 'प्रभा' नामकी एक मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी उसमें आलोचनाके लिए प्रसादका एक छोटा-सा कहानी-संग्रह आया। उस पुस्तिकाकी एक कहानीका नाम था मदन-मृणालिनी और एक कहानीका नाम छाया भी था। उन दिनों मौलिक कहानियाँ लिखनेका युग हिन्दीमें चल नहीं पकड़ पाया था। हमारे अन्य पड़ोसी प्रदेशोंकी भाषाओंमें भी अँगरेजी बाङ्ला कहानियोंके अनुवाद हुआ करते थे। 'प्रभा'के सम्पादकीय कार्यालयसे मैंने प्रसादजीको पत्र लिखा था कि कहानियाँ बहुत अच्छी हैं मैं

पुस्तकको दो बार पढ़ गया। कृपया लिखिए कि ये कहानियाँ कहींसे अनुवाद तो नहीं की गयी ? 'इन्दु' के सम्पादक 'गुप्तजी' का पत्र आया कि ये कहानियाँ मौलिक ही हैं। किन्तु प्रसादकी याददाश्त देखिए कि जब इस घटनाके १९ वर्ष बाद सन् १९१२ में शान्तिनिकेतनसे लौटते हुए मैं उनसे पहले-पहल मिला तब उन्होंने हँसकर कहा अब तो आपको विश्वास है कि मेरी कहानियाँ अनुवाद नहीं होतीं। इसके पश्चात् हम दोनों हँसते रहे और बहुत सी ऐसी बातें करते रहे जिनका कहना उस समय आवश्यक था।

सन् १९१३–१४ में प्रसादकी एक कविता 'इन्दु' में छपी थी। उसका शीर्षक यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो 'दृगबन्धु' था। उसमें विरक्त विचारों को देखकर मुझे लगा कि एक दृढ़ प्रेमका धर्म हिन्दीमें आ रहा है। अपनी इस प्रसन्नताको मैंने छेड़-छाड़ ही के द्वारा व्यक्त किया। मैंने इस आशयका एक पत्र उनको लिखा था कि श्रीधर पाठककी 'काश्मीर सुषमा' नामक कविताकी चुनौती नयी पीढ़ीको स्वीकार करनी चाहिए और निशंक तथा एकान्तोक्ति पर अपनी बात कहनी चाहिए। बहुत समयके पश्चात् इस पत्रका यह उत्तर आया था कि समय-समयपर मैं अपने विचार इसी तरह व्यक्त करता रहूँ। किन्तु जीवनपर पिताका बड़ा पहरा रहनेके कारण न मैं कागजको सँभालकर रख सकता था न मित्रोंके पास स्वतन्त्रतापूर्वक आ-जा सकता था और न ही पत्र-व्यवहार जारी रखकर अपने विचारके सिरपर संकट मोल ले सकता था।

जिस समय प्रसाद लिखने लगे उस समय हिन्दी-जगत्‌में दो घटनाएँ घटीं। एक यह कि स्वर्गीय पूज्य पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी और उनके द्वारा सम्पादित सरस्वती मासिक पत्रिकाके प्रयत्नोंसे कविताका ब्रजभाषाके स्थान खड़ी बोलीमें लिखा जाना प्रारम्भ हुआ था। इस समय इस विषय पर जमकर चर्चाएँ हो रही थीं कि कविता ब्रजभाषामें लिखी जाये अथवा खड़ी बोलीमें। प्रतिभाके धनी स्वर्गीय नाथूरामजी 'शंकर' शर्मा और हिन्दीके गौरव राय देवीप्रसादजी 'पूर्ण' ब्रज-भाषामें कविता लिखते हुए

खड़ी बोलीमें कविता लिखनेके लिए उन्मुख हुए थे, किन्तु राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्तकी जो कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होती थीं वे समस्त खड़ी बोलीमें लिखी जाती थीं। इसी प्रकार स्वर्गीय पण्डित कामताप्रसादजी गुरु 'सरस्वती' में और 'प्रभा' में भी खड़ी बोलीमें कविता लिखते थे। उस समयके विद्रोही तरुणकी तरह ही जयशंकर प्रसादजीने अपने कठिन मार्गके लिए खड़ी बोलीके इसी माध्यमको अपनाया। दूसरी घटना यह हुई कि भारतकी स्वाधीनताके लिए होनेवाले प्रयत्नोंमें हिन्दी-साहित्य जुटता जा रहा था। इन प्रयत्नोंका श्रीगणेश काशीसे ही वर्षों पहले स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र प्रारम्भ कर चुके थे। अत भारतीय जीवनको उन्नत बनाने वाले सुधारोंकी ओर साहित्यका ध्यान गया जो कि स्वाभाविक था।

जिस तरह भक्त-कवियों और रीति-कालीन कवियोंकी कवितामें एक संघर्ष स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है उसी तरह भारतेन्दु व द्विवेदी-युगीन सुधार वादी कवियों और नये छायावादी कवियोंमें भी एक संघर्ष उत्पन्न हुआ। यही समझमें नहीं आता कि उस समय काव्यका माधुर्य सुधारोंकी झड़पसे अपना अस्तित्व बचानेके लिए अथवा कविताके अमर माधुर्यको सुरक्षित रखनेके लिए यदि समाजमें संघर्ष उपस्थित नहीं करना चाहता था तो छायावादका रूप न लेता तो क्या करता। उपेक्षा, रुकावट, अपमान और बदनामीका बड़े-से-बड़ा मूल्य चुकाकर भी माधुर्यकी रक्षा करना और इस तरह प्रकारान्तरसे अपनी गलत या सही धारणाके अनुसार स्वभाव भरे हुए अनन्तक माधुर्यको उनकेसे अन्तरतम और अपनी पंक्तियोंका निहाल कर दे जानेके लिए छुपकर बात कह दे जानेके सिवा और चारा ही क्या? अतः उस समयका छायावाद यदि भारतीय पराधीनताके प्रति विद्रोह था और छुप-छिपकर जिन्दगी बिताना उसकी लाचारी थी तो सुधारवाद और यथार्थताके अधिक उपदेशप्रद ढंगसे उठकर चलनेके विरोधमें भाषा और कल्पनाकी मरु-पिपासा शांत करनेकी अपेक्षा भावोंको अपनी स्वतन्त्र बोधमें आँसुओं और अनुभूतियोंके पंख लगाकर आनन्द और माधुर्यको न छूटने देनेके लिए समस्त

बहुत्साकर भी विद्रोह करनेके लिए मुझमें माधुर्यकी तबीयत मचल-मचल पड़ती थी। इस तरहकी रचनाओंको सबसे पहले स्वर्गीय श्री गणेशशंकर विद्यार्थीने 'प्रताप'में प्रकाशित किया। यद्यपि सर्वसाधारणमें इस बातके फैलने की उन्हें अधिक आशा न थी। उन्होंने मुझसे कहा भी था कि ऐसी पंक्तियोंको लिखकर आप अकेले पड़ जायेंगे। मुझे यह मालूम नहीं था कि इस दिशामें भी जयशंकर प्रसाद कुछ लिख रहे हैं बहुत कुछ कर रहे हैं। मुझे उनकी रचनाओंकी ओर उन्मुख होनेका बहुत विलम्बसे अवसर मिला। आजके सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ. विनयमोहन शर्मा उन दिनों काशी विश्वविद्यालय पढ़ते थे। यह कोई सन् १९२७-२८ की बात है। वे जब काशीसे लौटते तो जयशंकर प्रसादकी रचनाओंसे खूब ही प्रभावित होकर लौटते। एक बार प्रसादजीकी 'आँसू' नामक पुस्तिका ले आये। मुझे लगा मानो कल्पनाके पत्थरमें साँस आ गयी। मेरा हृदय खिल उठा और भावात्मक काव्यके उस सबल प्रसार मेरा मन बाग-बाग हो उठा। रह-रहकर आज भी मुझे उस बातका विचार हुए बिना नहीं रहता।

एन्थ्रोपोलोजिस्ट (मानवशरीर-शास्त्र ज्ञाता) कहते हैं कि जमहाई लेना, आँखोंकी पलकोंका हिलना-डुलना, शरीरका सिकुड़ना और फैलना मनुष्य या प्राणी मात्रकी ये आदतें अथवा ऐसी ही क्रियाएँ अपने-आप होती हैं इनके लिए आयास नहीं करना पड़ता। संगीतमें राग-रागिनियोंके उतार-चढ़ावके रियाजमें वर्षों लग जाते हैं। किन्तु गुण और मुनि भी इस श्रमसे खाली नहीं क्योंकि अभ्यास, अनुभूति और अध्ययनके साथ चलते हैं। तब क्या काव्यकी सृष्टि ही इतनी वशीभूता है जो एन्थ्रोपोलोजिस्टकी बतायी क्रियाओंकी तरह अपने-आप होने लगी है? जिस समय प्रसादके उन्मुक्त काव्य भावोंको पढ़ता हूँ तो लगता है वह यौवनसे निर्मित किशोर नहीं है। साधनाका एक परिवार है जो प्रसादकी रचनाओंके पीछे खड़ा है। और तब प्रसादके उन वचनोंमें जहाँ रस दिखायी देता वहाँ छिप-छिपकर प्रसादका रस उसके लिए फिर आना भी दीख पड़ता है। इस

जयशंकर प्रसाद

पंक्तियों को देखिए,

क्यों व्यथित व्योम गंगा-सी
छिटका कर दोनों छोरें
चेतना तरंगिनी मेरी
लेती है मृदुल हिलोरें।

अथवा

जीवन में मृत्यु बसा है
जैसे बिजली हो घन में।

अथवा

विष-प्याली जो पी ली थी
वह मदिरा बनी हृदय में।

यथा

काली आँखों में कितनी
यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली।

यही क्यों

तिर रही अतृप्ति-जलधि में
नीलम की नाव निराली
काला पानी वेला-सी
है अंजन रेखा काली।

अथवा इसे पढ़िए,

तुम स्पर्श-हीन अनुभव-सी
नन्दन-तमाल के तल से
जग छा दो श्याम लता-सी
तन्द्रा-पल्लव विह्वल से।

सपनों की सोनजुही सब
बिखरे, यह बन कर तारा
सित-सरसिज से भर जावे
वह स्वर्गंगा की धारा।

और

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से।

इस तरह जब भी प्रसादने किसी वे कल्पनापर ही नहीं जाते उस समय वे सौन्दर्य आनन्द और तन्मयताकी मस्तीमें भरे हुए सम्पूर्ण धरती पर भी आये।

मैं यह मानता हूँ कि कवि अथवा कलाकार व्यक्तियोंको उठाकर फेंक देता है घटनाओंके आगे झुकता नहीं। वह केवल विचारोंके धरातलके सम्मुख व्यक्तिके वैभव और घटनाओंकी महानताको लेकर उपस्थित होता है इसलिए उसका जीवन अपनी कला-द्वारा व्यक्त विचारों और घटनाओं-की उसके द्वारा की हुई सीमापर निखर उठता है। जब कलाकार के जन्मके प्रकार और उसके आकारमें पूरी ढूँढ़ी जा सकती है तब उसके गद्य और पद्य तो पूरी ढूँढ़ी हो जा सकती है। कविताके समय प्रसाद ऐसे लगते हैं मानो कोई दीवाना काशीके दशाश्वमेध घाटपर बैठकर सारी काव्य-गंगाको अपने नयनोंके द्वारा अपने जीवनपर उतार लेना चाहता है और अन्तरकी मिठास घोलकर उसे अति मीठी कर देना चाहता है किन्तु जब हम प्रसादका गद्य पढ़ते हैं तब ऐसा लगता है मानो देश-देशके लिए आवश्यक व्यावहारिक विवेक अपनी रचनाओंका नियमन कर रहा है। लगता है प्रतिभाकी गाड़ीको अपने पथपर और घुमावके समय अनुसार युक्त करनेकी कीमत उसका प्रकार परिस्थिति और वायुके साथ समान

इनसाफ करनेमें माल-तोल होते थे। इस बातसे कौन दुखित न होगा कि प्रसादके कथनमेंसे सत्यके धार-धार झाँकते हुए अवतरण आप भले ले लें किन्तु उपदेश कहीं ढूँढे नहीं मिलता। लगता है कविता प्रसादकी वृष्टि है उनका गद्य उनकी सृष्टि। कविता प्रसादका प्यार है उनका गद्य उनका कर्तव्य। जो जानकारी कलाकार संगृहीत करता है उसे जन-जीवनके प्रति सावधान रहनेकी मनोवृत्तिका इतना पता है कि जानकारियोंके बीभत्स काँटे अपनी अनुभूतिके अंगोंको न गड़ने देनेके लिए अथवा गड़ उठनेपर अपने मुँहसे आह न निकलने देनेके लिए देव-दुर्लभ-सहिष्णुता भी उसके पास है। जो कलाकार घटनाओंको तोड़ते-मरोड़ते हैं वे उन घटनाओंके जानकार पहले होते हैं तब तोड़ते-मरोड़ते हैं। जानकार अपनी क्षमतासे अपने युगकी रक्षा करता है। मानो उस समय वह एक तम्बूका कार्य करता है किन्तु अपनी कल्पनाके प्रणाम भी कलाकार आनन्दको जन्म देनेकी क्षमता रखता है।

प्रसादके जाते समय चाहे लोगोंको कोई पता न चला हो किन्तु प्रसादको खोते समय यही ऐसा लगा मानो पृथ्वीके माधुर्य-देवके विलास महलका एक अकस्मात् स्तम्भ टूट गया। कार्योंमें खड़े होकर नहीं भावोंमें पर डालकर पाठक जान पाता है कि प्रसादका माधुर्य पराजित और असफल नहीं किन्तु आने वालेकी स्वस्थ पीढ़ीको काव्यके क्षेत्रमें क्या देनेमें असफल हुआ है। जिसे नहीं देखना था उसे उन्होंने कल्पनामें भी नहीं देखना चाहा। आनन्दको भयंकर कष्टोंमें भी क्षण मात्रके लिए उन्होंने दूर नहीं करना चाहा। प्रसादकी रचनाएँ दलदलका काव्य नहीं हैं न काव्यका दार्शनिक विश्लेषण है।

युग पास रहे कि युग दूर रहे न अभावोंकी पूर्ति करनेकी बजाय भावोंकी पूर्ति करनेमें अधिक तल्लीन रहे। अभावोंकी पूर्ति तो अपने-आप ही जाती या हो जाती।

नया युग प्रसाद के पास आया वहां अमर भी हुआ और एक

ज्योतिसे जलनेवाली दूसरी ज्योतिकी तरह प्रतिभाके धनकी विविधतामें युगके नायकों और प्रदेशोंकी दीपावलीका त्योहार मनाया किन्तु यह सब कुछ हुआ संस्कृतिकी भाषामें उपनिषदोंकी वाणीमें। भावोंकी वर्तमानता ही थे नहीं भावी तक में खेलनेवाले प्रसार व्यवहारके मूलमात्र इनमें क्रिया थे कि जो कुछ उन्होंने लिखा वह अत्यन्त ताजा होते हुए भी पुरान-पुरुषकी तरह पवित्र है। युग नयी शब्द-विन्यास नये प्रकटीकरणका तौर-तरीका नया पहुँच गयी किन्तु सोनोंकी तरह विश्वास पुराना। वाणीके ढाले हुए युग प्रभावक विश्वासकी वस्तु न थे। वे युगोंकी ढाली हुई वाणीको सँवारनेवाले थे।

सुमित्रानन्दन पन्त

वह तो पक्षी है जिसकी तानमें एक नैसर्गिक विकास है। उषाकी आलोक-भरी आभामें प्रत्येक प्राण गाता है। पर जब उसने गाया था तब सन्ध्याकी सलज्ज-भरी छाया थी। उसका हृदय छाया भरी उलझनसे निकलकर फिर प्रकाशके वातायनमें नाच उठा है।

उसकी पहली तानमें उच्छ्वास दूसरीमें आँसू और तीसरीमें वेदनाकी ध्वनि थी। आज वह निराशाके अवलम्बसे नीचे निरालम्बके नभस्तलमें मचल-मचलकर फुदुक-फुदुककर गा रहा है। सुख और दुःख दोनोंकी अस्थिरताको वह जान चुका है। उसका गुंजन चिरानन्दकी तान है।

उसके गानमें वसन्तका वैभव निर्झरका यौवन और वनकी मस्ती है। वह विश्व वनका राजकुमार स्वर और सौन्दर्यके हृदय-हृदयमें राग भर रहा है। उसमें मधु है आसव नहीं आकर्षण है, तीक्ष्णता नहीं जिसका अंग-अंग झंकार है जिसका रोम-रोम कम्पन है, जो रूपका स्वर और स्वरका रूप है।

सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राजीका अभाव प्रकृतिके पूर्वापर ऐसा लगता है मानो नर्मदाकी धाराका कोई महाप्रपातके अंतरालमें-सा चुराकर ले गया हो और हम निर्मल धाराके बिना तटके पुण्य तीर्थोंके सारे घाट मानो अपना अर्थ और उपयोग खो बैठे हों। लगता है मैंने अभी कलकी ही बात है श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान हमसे हँस रही थीं बोल रही थीं मिल रही थीं सोच रही थीं कि अचानक कालकी कठोर क्रीड़ाके विंध्यकी पथरीली टेकरियोंकी वह गर्विली मालिका आँखोंकी पानीकी तलवारकी तरह प्रान्तके राजनीतिक एवं साहित्यिक क्षितिजपर अद्भुत आभा बिखेरकर अपने जीवनको चिर-गर्विली ममताकी ओजस्विनी धाराकी भाँति स्मृतियोंकी पावन अंतरालोंमें लीन हो गयी।

स्वाभिमानका अमर तत्त्व एक बार अत्याचारपीड़ित गोलियों और गोलियोंकी पुकारसे निकलकर यशोदाके आँगनमें मिट्टीका स्वाद लेने आया और मुरली बोलियाकी अमर-पद प्रदान कर गया। झाँसी वीरियोंकी ललकार, बंधनोंकी विफलता, समाजके निष्ठुर बन्धनोंमें तड़प उठनेवाली असहाय अबलाओंकी आहें सुभद्राजीकी लेखनीमें नींव लायीं और उनकी ओजस्विनी वाणियाँ मध्य-प्रान्त व हिन्दी-संसारके घर-आँगनमें पूजा आदर और प्यारकी वस्तु बन गयी। समाजके अछूतों व उपेक्षितोंकी व्यथा लीडराओंकी प्रतिमा लिये पूर्व कालके पापाचारोंसे अभीतकभी निरन्तर संघर्ष कर रही थीं कि उनकी सहायताके लिए मृत्युकी ममताने निमन्त्रण भेजा गयी यह निर्मम ममताका बन्धन और अधिक अब सह न सकूँगी।

नान्ह-उमरकी अल्हड़ उमरमें अपने सारे आभूषणोंको उतारकर

भारतीय स्वतन्त्रताके सन्देशवाहक बापूकी असहयोग आन्दोलनमें दे देना सुभद्राजीके लिए जितना सहज था प्रान्तीय सरकारकी अकड़ भरी चुनौती को पानी-पानी कर देनेके लिए नागपुरके झण्डा-सत्याग्रहमें कारावासकी कठिनाइयोंको जीवनका आभूषण बना लेना भी उनके लिए उतना ही आसान था।

संघर्ष सुभद्राजीके लिए जीवनके सजीव पहलूका नाम था। निरंकुशताके एक बार संघर्षमें उतर पड़नेके बाद वे एकके पश्चात् दूसरी सफलताकी ओर बढ़ती गयीं। पति-पथके फूल और शूल उस कर्मासक्त प्रतिमाके दायें-बायें बिखरते गये। आजादीकी लड़ाई जोरसे जारी होती गयी किन्तु सुभद्राजीको किसीने पीछेकी कतारमें कब देखा? सन् १९०४ का कठोर आन्दोलन सुभद्राकी बेहम। फिर १९४२ की वह आखिरी कदम-कदम जिसपर आबू पानेके लिए भारतकी निहत्थी जनता भीषण अत्याचारों और संहार-शस्त्रोंकी शिकार बनायी जा रही थी भड़कते हुए आगके शोलोंमें विहँसती जीवनसे निर्द्वन्द्व झाँसीकी रानी 'वीरोंका कैसा हो वसन्त'के स्वरोंसे साफ जीवनको चिर झंकृत करनेवाली यह वीर बाला लोहेके सींखचोंमें कैद थी और अपनी कृतियासे आजादीके बलि-पन्थियोंका पथ-पथ आलोकित और गतिमान कर रही थी।

बचपन इस क्रान्तिबालाके हाथों पड़ी यह पुष्प-शलाका कभी निस्तब्धताओंमें प्राण भरती कभी मूक और विवश जनताके आम्पसर पड़ने वाले पत्थरोंपर वज्र बनकर टूटती कभी झाँसीवाली रानीका गाथा गाकर प्राणोंमें शक्ति संचार करती और जब वह सबसे अलग क्षणोंमें होती तो बिखरे स्वर्णकणोंको समेटकर आनेवाली पीढ़ीके भालको सुनहरा बना देने की तैयारीमें व्यस्त रहती। वह गीत नहीं जीवन-संगीत लिखती उसकी पार्श्वोंपर कल्पनाके कठोर मोती नहीं अनुभूतिके 'मन कणा'से बीसे पुष्प बिखरे होते। उन सिपियाकी आभा सेकसरियाके चाँदीके टुकड़ों-पर नहीं माँ कहकर मचल पड़नवाले कुमार-हृदयोंके ममता भर आह्वानों-

पर प्रतिबिम्बित होती।

असफल बचपन और विषाद भीगती सुभद्राकुमारीजी चौहानके जीवनसे सदा अपरिचित रहे। कठोरतम परीक्षामें भी इन्हें मुसकराते ही देखा।

"मैंने हँसना सीखा है, मैं नहीं जानती रोना
मुझसे मुखरित होता है मधुबन का कोना कोना।"

और

"मैं जिधर निकल जाती हूँ
मधुमास उतर आता है।"

सुभद्राजीकी ये पंक्तियाँ उनके दैन्य रहित जीवनकी सुन्दर व्याख्या है। आज उनके अवसानके पश्चात् उनके समयसे बसंत ग्रीष्म-सा सूख जाये क्यों न लगे। अब तो मानो सुभद्राजीकी ये पंक्तियाँ भी सच होने को थीं।

"आओ प्रिय ऋतुराज,
किन्तु धीरे से आना।
यह है शोकस्थान
यहाँ मत शोर मचाना।"

इस स्नेहमयी मातृप्रतिमाकी यादगारमें अपनी श्रद्धा और भक्तिके साथ पुनीत स्मृति का अभिनन्दनकी ये पंक्तियाँ भी

"आओ आज विदा देते हैं,
हम गीली अंजलि देकर।"

पुरातत्त्व-ज्ञानका सूर्य

कुछ महीने पहले समाचारपत्रोंमें लोगोंने पढ़ा था कि डॉक्टर काशी प्रसाद जायसवाल बीमार हैं। उसके थोड़े ही पश्चात् पढ़नेको मिला कि बाबा राहुल सांकृत्यायन अपनी चीन-यात्रा स्थगित कर लौट आये हैं जायसवालजीकी बीमारी बेढब हो रही है। यह खबर पढ़ते समय किसने सोचा था कि उसके बाद थोड़ी देर और और जायसवाल हमारे और स्पष्ट रूपकी दुनियासे उठकर केवल यादगार मनानेकी दुनियामें चले जायेंगे। हम आज या कलकी बीमारीपर चिन्ता प्रकट करते रहे, कब इसलिए तड़पते नजर आयेंगे कि जबतक यह विभूति हड्डी और मांसके ढाँचेमें बन्द रही तबतक एक बार फिर उसके दर्शनसे अपनको कृतार्थ न कर पाये! परन्तु समय यदि कहकर, बताकर और हमारे संकेत कामोंपर ही ध्यानकी आदत रखता तो शोक मनानेकी बात ही कहाँ थी?

समयकी निष्ठुरता इससे अधिक क्या हो सकती है कि भारतके अधिकांश प्रान्तोंमें नये शासन-विधानके अनुसार कांग्रेस राज्य स्थापित होनेकी तैयारियोंके साथ होनेवाली हलचलोंकी चहल-पहल बिहार अभी सम्भाल भी न पाया था कि अपने कीर्तिमय जीवनके तान-बान समेटकर भारतके खण्डहरोंमें ईंटों पत्थरों और नाना-प्रकारकी आकृति-प्रकृति रखनेवाले सिक्कोंमें सिमिटकर खोयी हुई आर्यावर्तकी गौरव-गरिमाको खोज-खोजकर जगाने और उसे हमारे वर्तमानके साथ समरस कर देनेके एकान्त-व्रती डॉक्टर जायसवाल अपने जीवनकी चादर समेट चले! सुना है, बिहारमें ऐसे तत्वोंकी संख्या कुछ अधिक है जो आवागमनकी सनातन हिन्दू भावना-का पुनर्संस्कार मानते हैं किन्तु यदि आज कोई जायसवालके पुनरागमनके आसरापर रहें इन 'दुर्संस्कार' को मस्तक झुकानेको कहे तो सम्भव है,

इतने बड़े प्रलोभनकी अवहेलना वे न कर सके । काश यह सम्भव होता ।

जायसवालजीका अवसान केवल छप्पन वर्षकी उम्रमें हो गया । जीवनके आदि-पर्वसे लगाकर स्वर्गारोहण तक इस प्रकाण्ड पुरातत्ववेत्ताका अद्वितीयताके साथ कुछ-ऐसा सम्बन्ध रहा कि दोनोंमें-से किसीने किसी का साथ न छोड़ा । वे पैदा हुए एक वणिकके घर था जिला मिरजापुरमें बाबू महादेवप्रसादके नामसे मशहूर और धनाढ्य सबसे बड़े रोजगारी । बाल्यकाल मिरजापुरमें ही बीता । हाई स्कूलकी सीढ़ियाँ समाप्त होते ही लन्दन भेज दिये गये । वहाँ एम. ए. हुए । चीनी भाषामें विशेषज्ञता प्राप्त की । सन् १९०७–८ में बैरिस्टर होकर भारत लौटे । कलकत्ता विश्वविद्यालयमें भारतीय इतिहासके (प्राचीन इतिहास उनका विषय था ।) प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए परन्तु एक वर्षसे अधिक वहाँ न टिक सके । पटना लौटे और यहीं जम गये । आर्यावर्तकी वैभवशालिनी विजयभूमि और दूर तक फैलानेवाले मगध-नरेशोंकी लीला भूमि विदेशी आक्रमणकारियोंके बाहर करनेमें पटु राजकुमारोंकी प्रत्यावर्तित बाहुओंकी रंगस्थली और भारतपर शासन करनेवाले रोमांचकारी सीमान्तिकामी पुष्यमित्रके विजेता वंशजोंकी यह स्थानभूमि डॉक्टर जायसवालको न छोड़ सकी । बिहारके कण-कणमें बिखरे हुए भारतीय इतिहासका प्रकाश लानेवाला यह अद्वितीय मनीषी आज जाह्नवी प्रवाहित उसी पवित्र भूमि-पर स्वयं इतिहास बनकर अमर हो गया ।

भारतकी प्राच्य जायसवाल पुरानी धरोहर बनकर आये थे । वे निर्माता थे । हिन्दुओंके प्राचीन इतिहासके नामसे जो बड़ा-बड़ा भार हीन विद्यार्थियोंके गलेमें डाल रखा था जायसवालजीने उसकी एक बारगी सफाई शुरू की । पहले तो भारतके विद्वानोंकी कड़ी आलोचनाएँ हुईं किन्तु मैदान जायसवालजीके हाथ रहा । उनके निश्चित मतोंको स्वीकार कर पुराने विद्वानोंको अपने मत और विचारोंके मत बदलने पड़े ।

सन् १५ से लगाकर सन् १५ तकके दोनों वर्ष भारतीय इतिहास

के 'तिमिर काल'के नामसे प्रसिद्ध है। सन् १९३३में प्रकाशित अपनी एक पुस्तकमें जायसवालजीने इस तिमिर कालपर प्रचुर प्रकाश डाला। इसके पश्चात् भारतीय इतिहासपर सम्भवतः जीवन-कालमें उनकी अन्तिम पुस्तक 'इम्पीरियल हिस्ट्री आफ इण्डिया' के नामसे प्रकाशित हुई।

जायसवालजीने जो कुछ लिखा वह सीमाकी प्रामाणिकताके साथ लिखा। उनकी लेखनीमें मन्त्रद्रष्टाकी-सी सूक्ष्मता, शब्दोंमें विचारोंको ठेल-कर आगे बढ़ानेकी प्रेरणा और विचारोंमें स्वयं गंगाकी गहराई मौजूद थी। जायसवाल जब लिखने बैठते तो मानो उनकी उँगलियाँ अतीतके भूगर्भके साथ वर्तमान और भविष्यके ताने-बाने जोड़नेमें व्यस्त हो जातीं, किन्तु उनका प्रामाणिक और समालोचक मस्तिष्क तबतक किसी भी विचारको मूर्त रूपमें कागजपर उतर आने और वर्तमान तथा भावी पीढ़ीका पावन धरोहर बन जाने देनेको तैयार न होता जबतक उनकी पैनी अन्तर्दृष्टि उसमें अशोक-स्तम्भकी भाँति अटल, बौद्ध-धर्मकी तरह विस्तृत और सत्य के समान चिरन्तन निधि न देख लेती। भौतिक काया-मायाके बन्धनोंसे पर होते हुए भी जायसवाल अपनी कृतियोंके रूपमें हमारे बीच उपस्थित हैं—अमर हैं।

ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान

वीरव्रती ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी चौहान अब इस संसारमें नहीं रहे। उनका जन्म खण्डवामें, शिक्षण आगरा और प्रयागमें, जीवन-यापन और देहावसान जबलपुरमें हुआ। सन् १८९४में जन्म लेकर ठाकुर लक्ष्मण सिंहने विविध क्षेत्रोंमें इतना और ऐसी अनुपम देश-सेवा की कि यदि वे एक परिवर्तित युग और गुलाम देशमें पैदा न हुए होते तो देश भक्त क्रान्तिवादी, समाज-सेवक कांग्रेसी पत्रकार नाटककार, कवि और निपुण पिस्तौल चलानेवाले तथा अन्तमें सत्याग्रहीके नाते उनकी कीर्ति देश-व्याप्त हुई होती। देश और समाजकी विरोधिनी शक्तियोंसे लोहा लेना और हंसते-हंसते कष्ट सह जाना इस प्रान्तके दो ठाकुरोंके स्वभावका अंग बन गया था— ठाकुर लक्ष्मणसिंह और निरंजनसिंह। इन दोनों नाम इसलिए ले रहा हूं कि क्रान्तिकारी-दलमें इस प्रान्तके केवल इन्हीं दो ठाकुरोंने अपनी सेवाएँ लगायी थीं।

जब ठाकुर लक्ष्मणसिंह जबलपुरके हाई स्कूलमें पढ़ते थे तभी से केवल इसलिए अपनी पारिवारिक कठिनाइयोंकी बात किसीसे न कहते थे कि वे तिरस्कारके साथ उत्पन्न दयाको किसीकी बरदाश्तवाली दयाका सह नहीं सकते थे। सन् १९११ में एक दिन प्रातःकाल लक्ष्मणसिंह मेरे घर आये और मेरी पत्नीसे बोले — भौजी! यह तो विरोधीदल प्रचार बांट रहा हूँ—। मैंने बीचमें ही टोककर पूछा — काहेका प्रचार है? क्यों व्यर्थ तंग करता है?" वह बोले "जी विरोधीदलमेंका प्रचार है। आज मैट्रिकका परीक्षाफल आ गया है और मैं फेल हो गया हूँ।" मैंने चिढ़कर कहा 'आप पहले यह अपनी असफलताका प्रचार आप बांट रहे हैं। त्योरी चढ़ाकर बेमूँछोंके नन्हें-मुन्हें लक्ष्मणने कहा — जी हाँ यह असफलता अब

फिरसे मेरे घर नहीं आ सकेंगी इसलिए जिन्दगीमें एक बार घर आये हुए मेहमानके आगमनकी खुशी मना रहा हूँ। और सचमुच जीवनमें उसके बाद लक्ष्मणसिंह कभी परीक्षामें फेल न हुए यद्यपि उनका विवाह भयंकर वाखिल्यमें हुआ।

लक्ष्मण कविता लिखा करते थे। बहुत अच्छी लिखते थे। मैं उन दिनों वृन्दावनसे 'प्रभा' नामक मासिक पत्रिका चलाया करता था। लक्ष्मण जब कविता लिखते निर्भीकताकी मात्रा सदैव ही कानूनके बन्धनोंको लाँघ जाया करती। रचनाएँ राजद्रोही हो जातीं। मैं उनकी पंक्तियोंमें कुछ थोड़ा परिवर्तन करके 'प्रभा' में छाप देता। उन दिनों लक्ष्मण आगरा कॉलेजमें पढ़ते थे। यह सन् १९१३–१४ की बात है। मैं वृन्दावनके गुरुकुल उत्सवमें जाते हुए, लक्ष्मणसिंहके पास 'बोर्डिंग'में ठहरा। मैंने उसके पास 'प्रभा'का वह अंक देखा जिसमें आस-पासकी सब छपाई सुरक्षित छोड़कर उनके नामकी कविता पूरी-की-पूरी काटकर फेंक दी गयी थी। गुस्ताका बोधीका मैं मैंने लक्ष्मणको पढ़ाया था। कुछ त्यौरी चढ़ा कर मैंने 'प्रभा' के पृष्ठपरसे कविता काट फेंकनेका ठाकुर लक्ष्मणसिंहसे कारण पूछा। लक्ष्मणसिंहकी आँखोंमें आँसू आ गये। बोले 'दादा मुझे पुरस्कार दीजिए। कविता छापनेमें राजद्रोह होता है उसे काटकर फेंक देनेमें तो नहीं होता?' मैं मनसे भर गया और उठकर अपने गलेके उमरने-से उनके आँसू पोंछ दिये और फिर मैंने अपने आँसू भी पोंछ लिये।

आगरा कॉलेजमें पढ़ते हुए ठाकुर लक्ष्मणसिंहने 'कुली प्रथा' नामक एक नाटक लिखा। गर्मियोंकी छुट्टियोंमें जब लक्ष्मणसिंह खण्डवा जाय तब वह नाटक मुझे देकर गये। मेरी पत्नीने उसे सहेजकर रख लिया। देवदारके पटियोंकी एक छोटी-सी पेटी ही मेरी लिखी हुई तुकी-बेतुकी चीजोंका छोटा-सा खजाना था। उसपर तीन आनेका ताला लगा था और उसकी चाबी मेरी करधनमें बंधी रहती थी। जब मैं उस पेटीके पास बैठता तब मेरी पत्नी और माता दोनों मुझसे बहुत नाराज होतीं। मैं मनि बहुत

करता था। उसका सन्देह था कि इस पेटीमें मैं कुछ ऐसी चीजें छिपा छिपाकर रखता हूँ जिसके कारण मुझे बार-बार पुलिस चौकी बुलाया जाता है। और इस तरह मैं अपने पिता और परिवारके नामपर कलंक लगाता हूँ। मेरी किताबों और अखबारोंको तो माताजी चूल्हेमें जला दिया करती थीं। कितनी क़ीमती किताबें न जला चुकी थीं अपने बेटेको किसी आफ़त-में पड़ जानेसे बचानेके लिए।

लोकमान्य तिलक उन दिनों माण्डले जेलमें छः वर्षोंकी सजा काट रहे थे। कांग्रेस नरमदलके हाथमें थी। सन् १९११ की बात है जब श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह (पश्चात् लार्ड सिन्हा) कांग्रेसके अध्यक्ष थे। उसी समय हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन (क्रान्तिकारियों)की बम्बईमें बैठक थी। मैं बम्बई गया था। मेरा [illegible] हिन्दी अनुवाद साथमें मुझे निर्मोना भाई गणपतशंकर 'विद्यार्थी' खण्डवा आये। चूँकि वे हमारे यहाँ पहले दो बार आ चुके थे। मैंने उनका स्वागत किया। गणपतजी और मेरी पत्नीकी सलाहसे मेरी पेटीका ताला टूटा और उसमेंका खजाना [illegible] गया। गणपतजी अपने साथ ठाकुर लक्ष्मणसिंहका नाटक 'मुक्ता प्रथा' लिये थे। नाटकपर लेखकका नाम 'रामानुज' लिखा गया था। नाटक कितने ही अंशों तक 'प्रताप'में छपता रहा और 'प्रताप' को उसके लिए दण्डस्वरूप एक बड़ी जमानतकी रकम भरना पड़ी। जब 'कर्मवीर' जबलपुरसे निकला तब उसके प्रथम सहायक सम्पादक ठाकुर लक्ष्मणसिंह थे। इस प्रान्तके साथ सन् १९२० से सन् १९२२ तक तीन वर्षोंके 'कर्मवीर' की लिखापढ़ीके जिन चमत्कारोंको याद रखे हुए हैं वह बहरहाल ठाकुर लक्ष्मणसिंहकी लगनीका था। जब महाकोशलमें प्रथम कांग्रेस बनी और उसके पश्चात् जब चुनाव हुआ तब कांग्रेसका मन्त्रिमण्डल निर्माण हुआ तो उसके प्रथम मन्त्रियोंमें बापूराव केशव रामचन्द्र [illegible] और ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान थे।

स्वर्गीया सुभद्राकुमारीका लक्ष्मणके घर बहू बनकर आना जन्मके

जीवनकी प्रधान घटना थी। सुभद्राके लिए लक्ष्मणने अपनी वकालतका बलिदान कर दिया। कैसे भले थे वे दिन। दोनों साहित्य लिखते दोनों भाषण करते। दोनों जेल जाते और राजनीतिक अवसरवादियोंके हाथों दोनों ही कुटिलतापूर्वक पीछे जाते। ऐसा लगता है मानो मरण इन दोनोंके जीवनसे हार गया। इस प्रान्तमें ऐसा कोई आन्दोलन नहीं हुआ जिसमें लक्ष्मणसिंह अपनी बलि देनेसे वंचित रहे हों। कैसी मीठी हैं ये बहादुर जिन्दगियाँ जो टूट गयीं पर झुकी नहीं। इन अनगिनत संस्मरणों को लेकर इनका बोझ दोना-भर बाकी रह गया है। ये संस्मरण इतने प्यारे हैं किन्तु इतने अधिक हैं कि मैं कैसे इन्हें कागजोंकी सीमामें बाँधूँ? यदि स्वाधीनताके अभिशापसे परे जीवनको देखनेवाली आँखें लक्ष्मण और सुभद्राके महान् जीवनको देखें तो सुभद्राकुमारी चौहान और लक्ष्मणसिंह चौहान जीवनके प्रतिभाशाली और कष्ट-सहिष्णु युगके ऐसे उज्ज्वल उदाहरण हैं जिन्हें पाकर युग भाग्यवान् हुआ करते हैं।

क्रोधमें भी लक्ष्मणका विनोद आश्चर्यजनक रहता था। एक बार एक सज्जन रेलमें लक्ष्मणसिंहसे झगड़ पड़े और उनकी तरफ अँगुली उठा-उठाकर गालियाँ देने लगे। अत्यन्त शान्तिसे लक्ष्मणसिंह बोले 'महाशय अब मुझे विश्वास हो गया कि मैं आदमसे बना हुआ हूँ" शेष मित्र यह जवाब सुनते ही ठहाका मारकर हँस पड़े और गाली देनेवाले महाशय खिसक चले गये।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहानको खोकर हिन्दी-जगत् और जबलपुर तथा इस प्रान्तने बहुत खोया था। ठाकुर लक्ष्मणसिंहको खोकर पुरुषार्थके साथ इसने सुभद्राकुमारीके संस्मरण-मन्दिरका स्वर्णकलश खो दिया। मुझे तो लक्ष्मण और सुभद्रा अभी भी ऐसे लगते हैं कि वे यहीं कहीं हैं और आगे वे किस ट्रेनसे उतरकर चले आयेंगे। सुभद्राजी जब लक्ष्मणपर बहुत प्रसन्न होतीं और लक्ष्मणके व्यंग्य और गुस्सेपर निहाल हो-हो उठतीं तो कहतीं 'लक्ष्मण तुम बड़े दुष्ट हो।' नन्हें-नन्हें बच्चोंको अचानक पाकर

जाते हुए लक्ष्मणको इसी वाक्यमें कन्हाइया देखकी आज मरी तबीयत होती है। लक्ष्मण गये। मैं जानता हूँ उनके स्थान तक अँगुलियाँ नहीं पहुँचायी जा सकतीं किन्तु यादें बराबर पहुँच रही हैं। मुझे आँखोंमें एक बार लक्ष्मणको देख पानेकी ललक दिखाई दे गयी किन्तु बन्द आँखोंके अन्धेरेमें वह अपने समस्त वैभवके साथ निरन्तर घूम रहे हैं। पीढ़ी पर दिन कोई भूल न चुका सकी जब लक्ष्मण और सुमित्रा हमारे बीचमें थे किन्तु विदा होकर आपदाओंका यह विद्रोही राजकुमार प्रभुता प्रतिमा और पुरुषार्थकी शरीरपर मूर्तता बीत तो सब ही कि य पीढ़ियाँ हमारी ही पीढ़ियाँ हैं। जो लोग विद्रोही राजनीतिमें पड़े उनके स्वभावमें कुछ ऐसा वैमुख्यपन आ गया कि वे झुकने और झुकाने तथा समझौता करनेकी राजनीतिमें सतत ही नीचेपर न उतर सके जिनसे वे चेतर उन विलासभरी सफलता निवास करती दिखायी जाती है तो भी साहस त्याग और शरीर जिनको विलासकी परम्परामें लक्ष्मणसिंहने अँगुलियोंपर गिनी जान वाली मुसद्दमारीमें अपना अस्तित्वके दो एक बहुत सुनहले बताये हैं। एक बार लक्ष्मण और सुमित्रा दोनोंके साथ साथ आश्रममें पड़ आतेक बरबान् बिलासपुर जाने मैंने एक सुनहरी लिखी थी

एक पर एक मर मिटा किन्तु
    रहे नित विमल टेक की याद
मरणों के पथ में पाते रहो,
    जीवनामृत के नये स्वाद।
झुके हो दोनों दोनों ओर,
    ठगसे हिल मिल झुकने रहो,
उमड़न में दो हृदय की आग,
    पथ पर रचने रहा।
उठा दो ये सारे भर कंध,
    समय की लो किरणों पर तान

और मैं करनेको चल पड़ूँ
तुम्हारी मधुर मूर्ति का ध्यान।

१८ सितम्बर सन् १९२१ को बिलासपुर जेलमें यह तुकबन्दी लिखी गयी थी जब कि लक्ष्मणसिंह और सुभद्राकुमारी दोनों गान्धीजीके झण्डेके तले असहयोग आन्दोलनमें भरपूर जुटे हुए थे। मुझे नहीं मालूम था कि सितम्बरके इसी अभागे महीनेमें मुझे अपनेसे उम्रमें छोटे अपने लाड़ले लक्ष्मणके लिए यह श्रद्धांजलि भी लिखनी पड़ेगी। लक्ष्मणको याद करके भरे ये आँसू और चि० अजय तथा बच्चे-बच्चियोंको मुझ बूढ़ेके असहाय आशीर्वाद। मैं जानता हूँ मैं कहकर भी कुछ न कह पाया और कहनेको बहुत बाकी रह गया।

अमर शहीद भगतसिंह

भगतसिंहको जीनेकी इच्छा नहीं थी। उन्होंने माफी माँगनेसे इनकार कर दिया। जेल रहनेको भी वे दूसरोंके लिए ही तैयार हो गये थे इस बुद्धिसे कि उनकी मृत्युसे आवेश में आकर कोई खून न कर डाले। भगतसिंह अहिंसाके पुजारी न थे परन्तु हिंसाको भी धर्म नहीं मानते थे। लाचारीसे ही खून करनेको तैयार थे। उनका अन्तिम पत्र था— "मैं तो लड़ते समय रणक्षेत्रमें पकड़ा गया हूँ। मुझे फाँसी नहीं दी जा सकती। मुझे या तो तोपके मुँहपर चढ़ाकर उड़ा दो या गोली मार दो।" इन वीरोंने मृत्यु भयको भी जीत लिया था। उनकी वीरताके लिए उन्हें हजार बार बधाई।

—महात्मा गान्धी

उनकी आत्मा वह चिनगारी थी जिसने सारे देशको प्रकाशित कर दिया। वह भारतकी गुलामीकी शृंखलाओंको तोड़े नहीं चैन ले सकता था। भारतके लिए उसका प्रेम अथाह था। भारतकी स्वाधीनताके लिए वह अत्यन्त आतुर था।

—जवाहरलाल नेहरू

भगतसिंह देशभक्त घरानेकी मिट्टी ढालनकी सफल रचनेवाले भारतीय क्रान्तिकारियोंके प्रथम युगके प्रचालक और प्रवर्तक एवं १९०७ में लाला लाजपतरायके साथ देश निकालेकी सजा पानेवाले सरदार अजितसिंहके छोटे भाई सरदार किशनसिंहके पुत्र थे। सरदार किशनसिंह भी भगतसिंहके बैठे-ठाले पिता न थे। जायदादकी हरजाना व हँसते-हँसते जेल जानेके आदी रहे। इस प्रकारका वीर रक्त जिनकी नसनाड़ी धमनियोंमें और

रहा था वह भगतसिंह भारतकी विदेशी सरकार द्वारा २३ मार्च १९३१को शामको फाँसीपर चढ़ा दिया गया।

जिस समय भारतकी उठती हुई जवानी अपने कांधे कन्धोंपर पीरी ममताके बोझसे मस्तक झुका देती थी उस समय भगतसिंह भारतमाताकी तरफ देखकर ओठ चबाने लगता। भगतसिंहको दुनियाकी आँखोंमें सुखी और हरा-भरा देखनेके लिए इस सम्पन्न परिवारके कुटुम्बिया और स्वयं भगतसिंहके पिताने भगतसिंहकी शादी रणजीतसिंहके खानदानकी एक लड़कीसे करना तय किया परन्तु भगतसिंहकी जवानी तो समुद्रकी मौजों की लहरोंसे पूछनेवाले भारतके चरणोंपर चढ़कर अपनी मस्ती खो चुकी थी। बेड़ियोंकी झंकारोंमें विपत्तियोंकी मूर्छना सुननेवाला यह तरुण विवाहकी तैयारियोंपर लात मारकर फरार हो गया। दो साल तक बाहरी दुनियाको उसका पता नहीं लगा।

थोड़े दिनों बाद साइमन-कमीशन आया। भगतसिंहने कलेजा थामकर देखा। गोरी चमड़ीवालोंका भाग्य निखर आया। उसके चंचल तरुण मनने सोचा 'क्या हमारा ही भाग्य हम सिफरके लिए ना-लायक ?' उस समय देशका अनुयायी होनेकी अपेक्षा अपने-आपका अनुयायी होना उसने अधिक मूल्यवान् समझा। विवेककी भी तो सीमाएँ हैं जिन्हें मरना और अपमानके अतिरेकमें तरुणाई लाँघ बैठती है। उसका हृदय साइमन-कमीशनके दौड़-धूपके अपमानसे भर रहा था पर अभी आखिरी चोट लगना बाकी था। साइमन-कमीशनके विरोधक जुलूसमें वृद्ध-योगी भारतीय नेता पंजाब केसरी लाला लाजपतरायका जाना और बूढ़े समयमें पुलिसके हाथों लाठियाँ खाना हिमालयसे हिन्द महासागर तकके तरुणोंको बेज़ार कर देनेवाली घटना थी। उस समय देहलीकी सभामें लाठी खाकर कराहते हुए लाला जीके मुँहसे निकला था कि 'ये लाठियाँ मुझपर नहीं ब्रिटिश साम्राज्य पर पड़ी हैं। अगर इस और ऐसी अन्य घटनाओंसे हमारे तरुण हमारे हाथसे बाहर हो जायें तो इसकी जिम्मेवारी सरकारपर होगी।" स्वर्गीय देशबन्धु

चितरंजनदासकी धर्म-पत्नी श्रीमती वासन्ती देवीने लालाजीके निधनपर समस्त देशकी तरुणाईपर लानत भेजी थी। उस समय देशके इन नेताओंने भारतीय तरुणाईसे कुर्बानीकी ही उम्मीद की होगी न कि उनके इस फैशन और हाथ पसार पटनेकी। किन्तु बूढ़ी गम्भीरताका नाम तो तरुणाई नहीं है। उन्होंने अपना दूसरा ही पथ पकड़ा और जो पथ पकड़ा उसके कारनामोंको उन्होंने खुले विश्वके सामने रख दिया। यद्यपि देश तरुणाईको अहिंसाके क्षेत्रमें तैयारीके साथ आमन्त्रण कर रहा था तथापि धैर्य मात्र इन पथ-भूलोंको उपेक्षणीय वस्तु थी।

बलिदानकी तैयारी

१७ दिसम्बर सन् १९२८ को गोली चली और मि० जे० पी० साण्डर्स गोलीसे बींध दिया गया। मुन्शी चननसिंहको गोली खानी पड़ी। चननसिंह स्वयं भी गोली खाकर मृत्युगामी हुए। इस तरह भारतमन-मन्थनके निर्णय की वेदीपर इन दो—अंग्रेज और भारतवासीका खून चढ़ा। जिन तरुणोंने गोली चलायी थी उन्होंने देशके अहिंसा-व्रतकी परवाह न कर खूनका बदला खूनसे लेनेके अपने क्रान्तिकारी प्रणको पूरा किया। पुलिस इतनी होशियार कि एक साल तक अपराधियोंका पता न लगा सकी। इसके बाद उसने चाहे जिस तरुणको चाहे जहाँ जिस तरीकेपर गिरफ्तार करके अपनी बहादुरी परिचय दिया। उस समय उन गिरफ्तारियोंमें लाहौर ही आतंक था। इसके बाद ४ अप्रैल १९२९ को असेम्बलीकी गैलरीसे बम फेंकनेवाले प्रेसिडेण्ट पटेल सरकारकी घोषणाओंके परिणाम पब्लिक सेफ्टी बिल (जन-रक्षा-कानून) पर अपना वक्तव्य देकर भारतीय भावनाकी बैठ चाहे प्रणालीसे दूर होकर भी जब एक नया प्रस्ताव करने जा रहे थे तभी मानो भारतीय तरुणोंके इस तरुणका स्वागत करनेके लिए असेम्बलीके प्रांगण एक धड़ाका हुआ। जिस समय अपराधियोंको पकड़नेके लिए अटकलें लगायी जाने लगीं उसी समय अपने-आप पुलिसके सामने आकर आत्मनिवेदन यहाँ

'संसारके बहरोंके कान खोलनेके लिए मैंने बम फेंका है। यह है मेरी पिस्तौल। आप मुझे चौकसे गिरफ्तार कर सकते हैं।" बहरोंको आवाज देनेवाले इस तरुणको और उसके मतवाले साथीको थोड़े दिनों बाद कानून का प्रसाद मिला। बटुकेश्वर काले पानीकी कड़वी घूँट पीने चला और भगतसिंह अपनी तकदीरके नये पट-परिवर्तनोंका सामना करने—अर्थात् सरकार-द्वारा चलाये जानेवाले नये मुकदमेके अभियुक्त बनकर लाहौर जेल-में चले गये।

यतीन्द्रकी शहादत

राष्ट्रीयतापर प्राणोंकी बाजी लगा देनेवाले इन तरुणोंको लाहौर जेलमें एक नया खिलवाड़ मिला। जिस तरह छलोंसे भरी सोनेकी अँगूठी बनाता सुनार किसी मचलते हुए बालकको कानोंकी बालियाँ सुधार देनेकी धुनमें थोड़ी देरके लिए अँगूठी अलग रख देता है वैसे ही इन पगलोंकी मस्तीने जेलके राज-बन्दियोंपर होनेवाले दुर्व्यवहारोंको दूर करनेके लिए लाहौर जेलमें १५ जून १९२९ से अनशन प्रारम्भ किया। एक-दो दिन नहीं पखवाड़ और महीने बीतने लगे। उपवास जारी रहा। राष्ट्रीयताकी यह मतवाली हुई कलियाँ मुरझाने लगीं। उधर सरकार अपनी क्रूरतापर अटल थी। देखते-देखते २१ सितम्बरको तरुण क्रान्तिकारी यतीन्द्र परलोक सिधारा। सरकारने समझा कि बस अब इन बगावती छोकरोंके होश ठिकाने लग जायेंगे। परन्तु इधर तो मौतको प्रेयसीकी तरह गले लगानेकी हवस थी। अन्तमें भारतकी तरुण दृढ़तापर ब्रिटेनका फौलादी पंजा ढीला पड़ा। राजनीतिक कैदियोंके दर्जे बने और उन्हें सुख-सुविधाएँ देनेकी सरकारने प्रतिज्ञा की।

इधर भारतीय तरुणाई उपवासके आँगनमें मौतको आमन्त्रण दे रही थी उधर भारतका फौजदारी कानून अपने जीवनके इतिहासके एक नये परिच्छेदमें नाना रंग भर रहा था। उसे मानो इन तरुणोंसे रस्सा-खिंचाई

बोलनी थी। महीनों उपवासके बाद एवं सरकार-द्वारा दो बार टलवाली यन्त्रणाओंके भीषणके बाद जब ये तरुण अपने मुकदमेके लिए अदालतमें उपस्थित न हो सके तब एक नये आर्डिनेन्स-द्वारा यह क़ानून बनाया गया कि अभियुक्तकी गैरहाज़िरीमें भी मैजिस्ट्रेट एक वकीलकी सहायतासे अभियुक्तके दोषोंपर विचार कर सकता है और अपना फ़ैसला दे सकता है। सभ्यता और न्यायके मुँहपर क़ानूनकी यह सफ़ेदी पोतकर इन अभियुक्तों का फ़ैसला किया—सरदार भगतसिंह राजगुरु और सुखदेवको फाँसीकी सज़ा दी गयी।

माताके चरणोंमें भेंट

अहिंसाकी लहर हिंसाकी कालिमा धोनेमें व्यस्त थी। बीसवीं सदीके प्राण-घातक शासनोंपर बैठकर गाँधीसे अधिक दुनियाकी तमाम चीखने वाली ब्रिटानिया शान्त और ठण्डी बूँदोंकी ताकतको पत्थरोंकी चहारदीवारी में अधिक देर बन्द न रख सकी। यह काँप रही थी। ह्वाइट हाउस और देहलीने नरमदलकी देहरीपर मस्तक झुकाया। बापूसे एक निकलनेवाले आपत्तियोंमें सीधा भगतसिंह बच गया। भारतके नौनिहालोंको बरसाकर की रस्सी इस बार नहीं छू सकेगी। पर ये सपने ही रहे। इधर शान्तिका शंख बज रहा था उधर हमारी दयनीय विवशताको ठोकर लगाते हुए देहलीको प्रतिहिंसाने गरजकर कहा 'भगत राजगुरु और सुखदेव क़ानूनके शिकार हैं। आजाद ऑर्डिनेन्सके खूनके सन्देहपर गिरफ़्तार होनेवाले अपराधी फाँसीको कोई ताकत नहीं बचा सकती। २१ मार्च १९३१ आखिरी दिन है।"

कालिमकी छुरीके नीचे तड़पते हुए बच्चोंको देखकर लाचार गायकी तरह अभागिनी माताने एक ठण्डी आह खींची और फिर देखती रह गयी। भारतीय तरुणाईने बलकर प्रार्थना की

"जननी जन तो भगत जन
यों दाता यों शूर।'

भगतसिंहकी उम्र तेईस-चौबीस की थी। सन् १९२१में उन्होंने लाहौरके डी० ए०वी० स्कूलका परित्याग असहयोग आन्दोलनकी लहरमें किया था। भगतसिंहके दादा बाबा सरदार अर्जुनसिंहने अपने दो सिंह अजित और सुखबको मातृवेदीपर १९ ८में बेलमें दान किया। भगतसिंह, उनका पोता उस परिवारकी ओरसे दिया गया तीसरा उपहार था।



रवीन्द्रनाथ ठाकुर

विनोदप्रवर काका कालेलकरने एक बार रवि ठाकुरकी कविता पढ़कर अपने बच्चोंको इस तरह उपस्थित किया था

'कली बोली प्यारे फल तुम कहाँ हो कितनी दूर हो ?

फलने अन्तरहृदयमें-से पुकारकर कहा देवि मैं तो तुम्हारे ही हृदयमें निवास करता हूँ तुम्हारे पास ही हूँ।'

रवि ठाकुरने अपनी किसी पद्य-पुस्तकमें एक उपमा देते हुए कहा था 'नावमें बैठा हुआ केवल वही अपराधी नहीं है जिसने उस नावको नीचेसे छेद कर दिया और पानीको नावमें भरना शुरू कर दिया किन्तु वह भी अपराधी है जो बढ़ते हुए पानीको जल्दी-जल्दी फेंक नहीं देता और अपनी तथा साथियोंकी रक्षामें जुट नहीं पड़ता।' लगता है गुरुवर रवि ठाकुर इस महान् देशकी परिभाषा लिखते थे और गान्धीजी परिभाषाके उदाहरण उपस्थित करते थे।

रवि ठाकुरने जाति भाषा और सम्प्रदायके छोटे छोटे भेदोंको पार कर लिया था। कदाचित् इसीलिए भारतवर्षने अपना राष्ट्रीय गान गुरुदेवके जन-गण-मन गानको बनाया और कदाचित् यही कारण है कि रवि ठाकुर की ऐतिहासिकीमें स्वराज्य निर्णयपर उनके विश्व भारती नामक ऐतिहासिक विश्वविद्यालयमें अपना उपकुलपति स्वतन्त्र भारतके प्रधान मन्त्री पं जवाहरलाल नेहरूको चुना।

रवि ठाकुरको पहले-पहल बहुत निकटसे मैंने भरतपुरके हिन्दी-साहित्य सम्मेलनमें देखा था। सम्मेलनके सभापति प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्वर्गीय श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा थे। भरतपुर राज्यके बड़े-बड़े सामन्त समाज उपस्थित थे। उस सभामें स्वर्गीय राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन भी विद्यमान

थे। रवि ठाकुर रेशमी लबादा पहने हुए थे। उनकी दाढ़ीके बालोंमें शुभ्रताकी ओर धीरे-धीरे क़दम बढ़ाया था और उनकी आँखोंके तेजस्वी पानीमें स्वतन्त्र भारतका उज्ज्वल भविष्य बोल रहा था। वे मक्खन-जैसे कोमल शब्द बोल रहे थे। उन शब्दोंमें फूलों-जैसी सुगन्ध पत्तों-जैसा हरियालापन और फलों-सा मीठा स्वाद अनुभव कर लोग मुग्ध हो रहे थे। जब मैं उन शब्दोंको सुन रहा था तब मेरे पास अवसरग्राहीके सम्पादक 'विद्यार्थी' आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी श्री हीरालालजी खन्ना तथा श्रीमती कमलाबाई साहिबा किबे श्रीमान् किबे साहब तथा अन्य कितने ही सज्जन बैठे थे। गुरुदेवको उस समय वाणी वरदानकी तरह प्राप्त थी। शब्द मानो सीधे तीरोंकी तरह मर्म भेद करते हुए निकल रहे थे।

श्रीमती कमलाबाई साहिबा किबे उन शब्दोंसे विशेष रस ले रही थीं क्योंकि उन्होंने अपने भाषणमें उस सम्मेलनमें कहा था 'हम नारियाँ हाथोंमें चूड़ियाँ पहनती हैं और सदैव एक मात्र अपने पतिका बनकर रहती हैं। आज इस चूड़ीदार पैजामेमें क्या है कि जिस पुरुषने भी पहना कि वह बहुलोक सामने मुक्तभाषा हो जाता है। यह अलगसे कहना आवश्यक नहीं है कि श्रीमती कमलाबाई साहिबाके पति श्रीमन्त सरदार किबे साहब उन दिनों इन्दौरके डिप्टी प्राइम मिनिस्टर थे।

रवि ठाकुर अपनी पोशाकमें बहुत भले मालूम होते थे। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि उनका परिवेश अधिक चमकीला था या उनके शब्द। वे भाषा-विभिन्नित शब्दोंमें अपनी बात कहे जा रहे थे और श्रोता उन लहरियोंमें डूब-से गये थे।

एक बार मैंने गुरुदेवको कदाचित् सन् १९३२ में शान्ति-निकेतनके उत्तरायणमें देखा था। मैं भाई बनारसीदासजी चतुर्वेदीके आमन्त्रणपर अनेक हिन्दी-भाषी देशबन्धुके साथ शान्ति निकेतन गया था। कलकत्तामें हम लोग किसी पैसेन्जर ट्रेनमें बैठे थे जो शान्ति-निकेतन विद्यालयके बोलपुर नामक स्टेशनपर लगभग दस-ग्यारह बजे पहुँचती थी। रेलवे स्टेशनपर हमें

यथास्थान पहुँचा देनेवाले मित्र उपस्थित थे। ज्यों ही शान्ति-निकेतनकी सीमामें मैंने प्रवेश किया मुझे प्रारम्भमें कुछ निराशा-सी हुई। न तो वहाँ किसी नदीका तट था न विन्ध्य और सतपुड़ाके-से जंगल थे न शिखरोंपर चढ़ती-सी सड़कें थीं न शिखरोंसे उतरती हुई पगडण्डियाँ ही दिखाई दी थीं। किन्तु थोड़ी ही देरमें मेरा मन हजारों वर्ष पीछे पहुँच गया और मैं भारतके स्वर्णयुगको अपने सम्मुख देखने लगा। छोटे-छोटे झोंपड़े मिट्टीकी दीवारोंवाले और उन दीवारोंपर महाभारत और रामायण कालकी तथा बुद्ध जातकोंकी घटनाओंके चित्र बने हुए थे। झोंपड़ीके द्वारपर उन निवासका भाव देखकर मेरा मन गद्गद हो उठा। थोड़ी ही दूर आगे मैंने शान्ति-निकेतनका क्लास-रूम देखा जो एक वृक्षके नीचे था। अपनी मर्यादाकी सम्पूर्ण रक्षा करते हुए लड़के और लड़कियाँ वहाँ उपस्थित थे। अपने वर्ग-अनुसार विद्यार्थियोंमें केन्द्रमें बैठे हुए अध्यापक भी ही जैसे मालूम होते थे। लगता था ये प्राध्यापक उन प्राध्यापकोंसे भिन्न हैं जो कॉलेजों या विश्वविद्यालयोंमें पढ़ाते हैं। अध्यापकोंके पढ़ानेकी शैली ऐसी थी जिसमें-से अध्यापनका दर्प कहीं बाहर नहीं आ रहा था। लगता था यदि पढ़नेवाले लड़के कक्षामें किसी अवसर विद्यार्थी बन जा सकते हैं तो प्राध्यापकको भी किसी अर्थमें यहाँ विद्यार्थी ही बनना पड़ता।

रवि ठाकुर जिस स्थानमें रहते थे उसका नाम था उत्तरायण। वहाँ हम लोग जाकर बैठे थे। वहाँ एक छोटा-सा सीमेण्ट और खपरोंका मकान बना हुआ था। वहीं आचार्य क्षितीन्द्रमोहन सेनजीने हमसे कहा कि रवि ठाकुर झोंपड़ीमें और मिट्टीके घरोंमें रहना ज्यादा पसन्द करते हैं। यह सुनकर मुझे लगा कि हम लोगोंको भी बनारसीदास चतुर्वेदी किसी बाजार मार्गसे नहीं घसीट लाये हैं किसी तीर्थ स्थानमें ले आये हैं।

अमीरी और गरीबीसे परे एक विमल प्रतिभाशीलता वहाँ खेल रही थी जिसमें फूलोंकी तरह मूक भावोंमें भी रंगों-भरा गुणान्वित वैभव निखरता और बिखरता रहता है और जब मुझसे उत्तरायणमें भेंट हुई

तब उनके दर्शन कर ऐसा लगा मानो विद्वद्वर डॉक्टर ताराचन्दका यह कथन सर्वदा सत्य है कि ज्ञानवाद और रहस्यवाद अनन्तके ही अंग हैं। और आज जब चरण-चरण चलते हुए विनोबा भावे यह कहते हैं कि धर्म और राजनीतिका युग समाप्त हो गया अब तो दर्शन शास्त्र और विज्ञानका युग आ गया है तब शान्ति-निकेतनकी बातोंकी पृष्ठभूमिमें विनोबा भावेके ये विचार बहुत ही वजनदार दिखायी देते हैं।

जब हम लोग लौटकर हजारीप्रसादजी द्विवेदी (जो उन दिनों वहाँ हिन्दीमें आचार्य थे) के घर आये तब हमसे किसीने कहा आज गुरुदेव अपने विश्व भारतीके विद्यार्थियोंमें भाषण करने पधारनेवाले हैं तथा गुरुदेवकी यह बुरी आदत है कि वे कलकत्तेसे आये हुए अपने विरोधियोंका स्वागत सम्मान नहीं करने देना चाहते। मुझे ऐसा लगा कि जगत्‌की बातचीतसे प्रभावित हम आप सच्चा रवीन्द्रनाथको समझनेमें असमर्थ-से हैं। यदि सच्चा सचमुच माताकी तरह है वह अपने विचारोंका प्रजनन करता है उन्हें दुलारता और सँवारता है उन्हें अपने अन्तःकरणसे लोगोंके अन्तःकरण में बोलनेके लिए सिखलाता है उन्हें घुटनेके बल झुककर नीचेसे ऊपर उठाता है अपने अन्तरंगके रक्तका बल देकर उनका पालन-पोषण करता है तो जगत्‌की कौन माता ऐसी है जो यह चाह सकेगी कि एक ओर वह बच्चोंको जन्म दिये जाये और दूसरी ओर उनका हत्यारा उन्हें काट-काट कर टुकड़े-टुकड़े करता चला जाये।

शान्तिनिकेतनके साथ लगा हुआ श्रीनिकेतन भी मैंने देखा। उन दिनों विदेशोंसे आये हुए डॉ० गिरिधरसहायजी श्रीनिकेतनमें काम कर रहे थे। श्रीनिकेतन विश्वभारती विश्वविद्यालय शान्तिनिकेतनका वह स्थान है जहाँ ग्रामोंकी परिचर्याके लिए लोग तैयार किये जाते हैं। सत्य ही यदि जनपद ग्रामोंकी सेवा करने योग्य नहीं है तो उसका अर्थ ही क्या शेष रह जाता है? यहीं आकर मालूम हुआ कि नन्दलाल बोस-जैसे कलाकारके प्रख्यात चित्रकारके चित्रोंसे श्रीनिकेतनकी झोंपड़ियाँ सुशोभित हैं।

ग्रामीण गीतोंमें गुरुदेव यहाँ ऐसा रस लेते देखे गये मानो वह अन्य लोकके नहीं इसी लोकके प्राणी हैं। ये ग्राम-गीत अथवा ग्रामीण-गीत मधुर तो थे ही साथ ही यह भी सूचित करते थे कि ग्रामवासिनी भारती माता इन गीतोंमें भाषा बोलनेका उपक्रम कर रही है।

लगता है चिन्तन और कृति हमारे दिमाग और मनकी ऊँचाइयोंके नाम हैं। यहाँ विचारोंसे आचार बदलनेसे इनकार करता है और आचारों की भीड़ भाड़में विचार ऊँचा मस्तक किये चला जा रहा है। लगता है एक सिर है दूसरा धड़। यहाँकी वाणियाँ पुकार-पुकारकर कह रही हैं कि खेतोंकी तरफ आओ खेतोंकी तरफ लौटो! मानो यह वाणी आचारों-से नहीं विचारोंसे कही जा रही है। यहाँकी गाँवकी संध्याम छोटी छोटी टिम-टिम रश्मियोंको देखकर आभा हमारे मनके दारिद्र्यका ध्यान और हमारी रचनाओंकी पहचान हुए बिना नहीं रहती।

यहाँके हरियाले कुञ्जोंमें सुगन्धित फूल हमारे स्थानों-जैसे ही लगते हैं परन्तु शान्ति-निकेतन और श्रीनिकेतनकी पृष्ठभूमिमें छोटा-सा अजायब घर यहाँ मुझे बड़ा अच्छा लगा। ऐसे अजायबघर तो हमारे गाँव-गाँवमें होने चाहिए जिससे ग्रामीण लोग अपने गाँवमें होनेवाली उपजको जान सकें और अपने गाँवकी उपजका लेखा-जोखा रख सकें। इस अजायब घरमें नन्दलाल बोसकी सतुआ खाते हुए ग्रामीणोंकी मूर्तियाँ तथा यहाँके वातावरणकी एकत्रित वस्तुएँ मनपर ग्रामीण प्रभाव डाले बिना नहीं रहतीं। इसी तरह कपड़ेके नमूने खिलौनेके नमूने अन्य पशु-पक्षियोंके नमूने और उनके फलों तथा फसलोंके स्वरूप बड़े प्यारे लगे।

इन सबको देखकर यह विचार भी आया कि इन सब वस्तुओंसे अलग रहकर रवीन्द्रनाथ ऊँची बातें कैसे कह ले जाते थे और हजारों वर्ष पहलेके भारतीय ऋषि जीवनका दर्शन कैसे कर जाते थे। लगता है, हर बारहवें-तेरहवें वर्ष बनाये गये हमारे काव्यग्रन्थोंका मुख्य कुछ भी हो किन्तु वैराग्य हमारी ऐसी निधि है जिससे हम दूर नहीं रह सकते और

दूर रहकर अवश्य किए उपवासों भी नहीं हो सकते । हमारी सहिष्णुता को अनुप्राणित करनेवाले तत्त्वोंको हम असहिष्णु कैसे समझें । हमारे महाद्वीप-के शालवनों-सी ऊँची कुम्भकर्णों-सी विस्तृत और महासागरों-सी गहरी बातें ही हमारे पास कहाँ हैं, तब वर्तमान स्थिति और विपत्तिमें हमारे बेड़े पार लगें तो कैसे ?

कविवर रवीन्द्रके शब्दोंमें शान्तिनिकेतनके स्थापित करनेका उद्देश्य यह है कि बालकको लौटाकर अपनी पूर्ववासर गाँवोंमें लाया जाये । उन्हें कम खर्चीले और आत्मनिर्भर होनेका गुर बताया जाये । उन्हें सुझाया जाये कि उनकी भी कोई इज्जत है और उसकी भी रक्षा होनी चाहिए । वे अपने देशके उन सांस्कृतिक व्यवहारोंको जानें समझें जिनसे व वर्तमान ग्रामि प्रकारों और साधनोंका अपने आस-पास उचित उपयोग होते देख सकें । जिससे उनके शरीर बलवान हों उनके मन बारीकसे-बारीक बातको सोच सकें और वे अपनी आर्थिक दशाको सुधार सकें ।

हमारा तो उद्देश्य है कि अपने आस-पासके गाँव-के लोगोंको हम पूरी स्वतन्त्रता दे सकें । जिससे गाँवमें शिक्षाका प्रवेश हो सके और अपने आदर्शोंमें प्राचीन अभिवृद्धि कर सकें । प्राचीन-जैसे हमारे गायन और वाद्य और नृत्यके कलाओंको देखने-सुनने समूह बनाकर बाहर आता है वैसे ही हम उत्सव इन कामोंको देखनेके लिए शीघ्रसे-शीघ्र गाँवोंमें जा सकें ।

जिस तरह भूगर्भमें भूमिकी गरमी और पृथ्वीकी रुकावटसे धीरे-धीरे ऐसे पत्थर बनते रहते हैं जिन्हें हम हीरा पुखराज और नाने भिन्न-भिन्न नामोंके रत्न कहने लगते हैं उसी तरह संयमकी रुकावटों और हृदयकी कोमलताके साहित्यमें कविताके ऐसे रत्न बनने लगते हैं जिनकी आभासे संसार चमत्कृत हुए बिना नहीं रहता और जिन्हें धारण कर वह अपनेको गौरवान्वित अनुभव करता है । कुछ लोग ऐसे रत्नोंको घिसनेकी क्रियामें अधिक निपुण होते हैं कुछ बाल काँचके टुकड़ोंको घिस-घिसकर चौकटोंमें

जमा लेते हैं और भेद-बुद्धिसे आग्रह करते हैं कि बीचके पानी छिछे-छिछे टुकड़ोंको रख कहा जाने लगे। कुछ स्थानोंपर धन उसी प्रकार बेकार जमा होते हैं जिस प्रकार बड़ी नदियों और बोचे सरोवरोंके घाटोंपर यात्रियोंसे खाली बँधी हुई नौकाएँ बेकार बोझ पड़ती हैं क्योंकि समरसत्वका लेकर मछलियों तक सब कुछ गतिशील बाधक कलेवरमें बहता रहता है और हम 'कुछको सब कुछ' मानकर नौकाओंके आस-पास ही मँडराते रहते हैं।

शान्ति-निकेतन और श्रीनिकेतनमें मानो रवीन्द्रनाथका और गान्धीका साथ-साथ बोलता हुआ दीख पड़ता है। वह मानो पुकारकर कहता है कि हमारी विभिन्नतामें एकता निवास करती है। क्या ही अच्छा हो कि इस देशकी ओरसे संसारकी विभिन्नतामें एकता स्थापित हो सके और हम रवीन्द्रनाथको अच्छी तरह पहचान सकें।

भारतीय संस्कृतिका गौरव और उपनिषदीय सूत्रोंका वैभव गुरुदेवकी रचनाओंमें स्पष्ट दीख पड़ता है। लगता है उनके रहस्यवादमें इनका दान युगों-युगोंको भेंट सकनेवाली भाषाम व्यक्त हुआ है। वे निरी राष्ट्रीयताको अधिक महत्व नहीं दे पाते थे और उसे कभी अन्तर्राष्ट्रीयताके मार्गे नहीं आने देना चाहते थे। वे चाहते थे कि :

"जहाँ मस्तिष्क भयहीन और मस्तक ऊँचा उठा हुआ है,
जहाँ ज्ञान मुक्त है और विश्व संकुचित सीमाओं में
विभाजित नहीं है

जहाँ शब्द सत्य की गहराई में-से जन्म धारण करते हैं,
और जहाँ अथक प्रयत्नशीलता सम्पूर्णता की ओर आगे बढ़ती है,
जहाँ विवेक की शुद्ध धारा रूढ़ियों के रेगिस्तान में मार्ग नहीं लो
बैठती

जहाँ मानस ऊर्ध्वमुखी होकर निरन्तर विस्तार पाते हुए विचारों
और क्रियाओं में आगे बढ़ता है,

उस मुक्ति के स्वर्गमें—
हे परम पिता !
मेरे राष्ट्र का जागरण हो !'

हमारे बीचकी विभेदक रेखाओंको तोड़ना और नष्ट करते जाना मानो उनका व्रत था। सारा भारतवर्ष और सम्पूर्ण जगत् ऐसे ही भेदहीन और भेद-बुद्धिरहित रवि ठाकुरको युगके कवि और मनीषि पयगम्बरको याद करता रहता है याद करता रहेगा।



पण्डित मोतीलाल नेहरू

सबसे पहले पण्डित मोतीलालजी नेहरूके सम्पर्कमें आनेका सुअवसर मुझे अहमदाबादके अखिल भारतीय कांग्रेसके अधिवेशनमें मिला जो शायद सन् १९२१ में हुआ था। उक्त अधिवेशनके सभापति मौलाना अबुल कलाम आजाद थे। हरिजनोंके लिए किये गये यरवदा जेलके अन्दर उपवासके बाद गान्धीजी छूटकर साबरमती आये। क्रान्तिवादी श्रीगोपीनाथ साहाके बलिदानके प्रश्नपर देशबन्धुदास और पण्डित मोतीलाल नेहरू एक तरफ थे और महात्मा गान्धी तथा मौलाना आजाद दूसरी तरफ। स्वभावतः प्रथम तो कांग्रेस कमेटीका निर्णय स्वर्गीय श्री दास व मोतीलालजीके प्रतिकूल ही गया। पण्डित मोतीलाल नेहरूने गर्जना की मुझ इस कमेटीके प्रस्तावसे कोई नहीं हटा सकता। यह मेरा देश है और मैं शरीरकी बोटी-बोटी इस देशपर उत्सर्ग कर दूँगा। जितने ही उपस्थित सदस्योंके ही नहीं स्वयं महात्मा गान्धीके नेत्रोंसे उस समय जल बरस पड़ा था। भला इतनी बड़ी त्यागमयी विभूतिको छोड़कर गान्धीजी इस देशके लिए करते भी तो क्या करते? स्वयं देशबन्धु पण्डितजीकी गतिविधियोंका आवेग किस तत्परतासे देख रहे थे।

अन्तमें कांग्रेस कमेटीका निर्णय यही हुआ जिससे यह देश तो क्या ही कांग्रेस भी टूक-टूक होनेसे बच गयी। यह गान्धीजीके आँसुओंकी जीत थी या पण्डित मोतीलाल नेहरूके त्यागकी कहना कठिन है। अलबत्ता गान्धीजीके आँसू उस समय असमान मुक्ता बनकर मोतीलालजीके स्नेहपर पहरा दे रहे थे। यह सचमुच शस्त्र और शास्त्र क्रान्तिवाद और गान्धीवाद दोनोंके एकीकरणका दुर्लभ क्षण था। उस दिन मैंने पहले-पहल मोतीलालजीको इस देशके गौरवके रूपमें देखा था।

दूसरी बार मैंने पण्डित मोतीलाल नेहरूको सन् १९२९ में देखा जब व ग्रेस व राष्ट्रका कार्य करनेके लिए जबलपुर पधारे और राजा गोकुल-सके महलमें ठहरे थे। उस समय जब वे जबलपुरसे कटनी जाय और न्होंने अपना दौरा प्रारम्भ किया तब श्रीमान् दुर्गाशंकर मेहता सेठ गोविन्द स पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र और मैं तथा अन्य लोग उनके साथ-साथ किन्तु जब वे बीना होकर बम्बईकी ओर चले तब इनमें-से केवल मैं और पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र ही उनके साथ थे। सायम श्री रामदयाल चतुर्वेदी और आमराके मिरोमणि मन्नु जैसे तेजस्वी तरुण भी थे जो ण्डित मोतीलालजीके लिए स्वास्थ्यवर्धक वस्तुओंको खान-भण्डार रखते । उस समय पण्डितजीके साथ उनके सेक्रेटरी श्री उपाध्याय और उनके क व्यक्तिगत सेवक थे जिन्हें व हरि कहकर पुकारते थे।

रेलमें पण्डित मोतीलालजीके अध्ययन-क्रमको देखकर मैं हक्का-बक्का रह गया। व अपना कुरता तक फेंककर दोनों खाटोंके बीचकी जगहमें कलोचा बिछाकर अपनी अध्ययन-सामग्री रखे हुए थे और उसमें निमग्न लगा रह । रेलके चलने और ठहरनेपर व बिलकुल ही ध्यान नहीं दे रहे थे।

उन्हीं दिनों कांग्रेसके एक प्रबल विरोधी श्री राघवेन्द्रराव शायद जबलपुरमें पण्डित मोतीलालजीको चुनौती दे आये थे कि उन्हें (श्री राघवेन्द्रराव को) छोड़कर मध्यप्रदेशको कांग्रेस टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। अपने दौरेमें पण्डितजी इस बातकी जाँच भी करना चाहते थे। जब पण्डित मोतीलालजी कटनी पहुँचे तो एक नामी-गरामी नेता कांग्रेसके विरोधमें भाषण दे चुके थे। य नेता पहले कांग्रेसी ही थे किन्तु अपनी छह महीनेकी विदेश यात्रासे लौटकर कांग्रेस विरोधी हो गये थे। उन्होंने कटनीकी जनतासे अपील की थी कि मैं इनसे बरसोंका बूढ़ा हूँ अतः मेरी बात मानकर आप कांग्रेसके फन्देमें न पड़ें। पण्डित मोतीलाल नेहरूने सभामण्डपकी स्पष्टतासे अत्यन्त गौर-गम्भीर स्वरमें उन बातोंकी चर्चा करते हुए कहा था कि उन नेताके मेरा कोई झगड़ा नहीं है स्नेह ही है। किन्तु छह महीने

पहले तक वे कांग्रेसमें रहे हैं और उनका कांग्रेसके समर्थनमें वक्तव्य है। अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि हम अपने नेताकी भारतमें रहनेवाली समस्त जीवनीका सार मानें अथवा विलायतमें छह महीने रह आनेवाले नेताजीकी बात मानें। मेरा निवेदन है कि आप इस समयकी परिस्थिति जानकर वक्तव्य देनेवाले नेताजीकी बात मानें"। उस समय अपने मुँहसे कटु शब्द बिलकुल न निकलने देनेवाले पण्डित मोतीलालजीकी कथनीको सुनकर मेरा हृदय गद्गद था। मैं उन दिनों खूब तरुण था और पण्डित मोतीलालजीके धैर्यसे असन्तुष्ट। किन्तु जब चुनाव हो चुके तो कांग्रेसकी प्रचण्ड विजयके रूपमें मैंने देखा कि स्वर्गीय पण्डित मोतीलालजीका धैर्य और बोलनेका नियन्त्रण कितने बलवान् रूपमें विजयी हुआ।

एक बार मैं स्वर्गीय पण्डितजीके साथ बैतूल जा रहा था। इटारसीमें ट्रेन बदलनी थी। इटारसी स्टेशनपर तत्कालीन भारत सरकारके चार्ल्स और लेडी इनस' मिल गये। पण्डितजी खादीकी टोपी खादीका कुरता और सम्पूर्ण खादी परिवेशमें बड़े भले मालूम दे रहे थे। उनका गौर वर्ण मानो खिल उठा था। उनकी खादीपर कोमल आक्षेप-सा करते हुए लेडी इनस'ने कहा 'पण्डितजी खादीकी टोपी पहनकर तो आप पहचानमें ही नहीं आते।' पण्डितजीका जवाब मानो आने वाली पीढ़ीका जवाब था। वे बोले 'अरे आप मेरे इस छोटे-से परिवर्तन-से घबड़ा गयीं? हमारी आनेकी पीढ़ी तो हमारी पीछेकी पीढ़ियाँ दहलाकर परिवर्तन करेंगी। मैं तो इसी आशामें काम कर रहा हूँ।' पण्डितजी जब जवाब दे रहे थे उनके चेहरेपर क्षोभका निशान नहीं था। वे अत्यन्त ठण्डे स्वरमें बोल रहे थे।

पण्डितजीके बैतूल पहुँचनेसे पूर्व होशंगाबादमें एक घटना हो गयी थी। उसकी प्रसंगवश चर्चा आवश्यक है। हुआ यह कि एक नेता होशंगाबादमें आये। जनताकी पब्लिक पार्टीमें उनका भाषण हुआ। होशंगाबादके लोग विशेषतः जैन और वैष्णव हैं कुछ मुसलमान भी हैं। नेताजीको इस

आदतका बहुत शौक था कि वे जहाँ-तहाँ हिन्दू और ब्राह्मण होकर भी अपने गोश्त खानेकी चर्चा करते थे। अतः जब उनकी सभा ऐनमें भरी थी तो एक मनचलेने उक्त नेताकी याने वक्ता महोदयसे शरारतन सभाके बीचमें खड़े होकर पूछा कि आप सिर्फ गोश्त ही खाते हैं या मछली भी? नेताजीने सहज भावसे उत्तर दिया 'जी नहीं मैं केवल गोश्त खाता हूँ।' नर्मदाके घाटकी उस सभाके वैष्णव और जैन यह सुनते ही एक बड़ी तादादमें वहाँसे खिसक गये और सभाकी उपस्थिति बहुत कम रह गयी। उक्त सभाके सभापतिजीको इसपर इतने जोरसे गुस्सा आया कि उन्होंने लाल सियाही-की अपनी दवात उक्त प्रश्नकर्ता सज्जनपर फेंक दी। इसके बीस वर्ष पश्चात् बैतूलमें पण्डित मोतीलालजीसे इस घटनाका दृश्य दुहरानेकी कोशिश की गयी। जब एक विशाल जन-समाज पण्डितजी बोलनेके लिए खड़े हुए तब एक वकील साहबने उनसे वही हौसलाबाजीका प्रश्न दोहराया। सभापतिके स्थानपर उस सभामें कदाचित् कोई स्थानीय सज्जन बैठे हुए थे। पण्डित मोतीलालजीने प्रश्न पूछनेवाले वकील साहबको मुँहतोड़ जवाब देते हुए कहा "चार पाँव रखनेवालोंमें मैं सिर्फ चारपाई नहीं खाता उड़नेवालों-में मैं पतंग नहीं खाता और यदि आप इस देशकी स्वतन्त्रताके विरोधी हों तो मैं खड़े-खड़े इसी सभामें आपको खा सकता हूँ।" इतना कहकर पण्डितजी अपनी बारबार स्वाभाविक हँसीमें खिलखिला पड़े। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्रश्नकर्ता महोदय जो कदाचित् उक्त प्रश्न करनेके ही लिए उस सभामें आये थे सभासे पलायन कर गये। लोगोंने उन्हें समझाया भी किन्तु वे किसकी मानें। वे चले गये तो चले गये।

एक बार मैंने पण्डित मोतीलालजीका आनन्द भवन प्रयागमें देखा। चुनावमें जीत होनेके कारण और प्रान्तका अधिकांश बहुमत एकमुश्त हो जानेके कारण वे अत्यन्त प्रसन्न थे। उस समय स्वर्गीय सेठ जमनालालजी और मैं दोनों ही आनन्द भवनमें ठहरे थे। मैं सर्वदा इन विचारोंमें घुमड़ता रहता था कि अमीरोंकी जिन्दगीमें गरीबीके विचार किस तरह मिलकर एक

सकते हैं। (अभी भी इस विषयपर मैं विचार करता रहता हूँ।) पण्डित मोतीलालजीने इस सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था जो अपनी अमीरीकी किस्मतोंकी सुविधाएँ त्याग कर गरीबोंकी सभामें नहीं आ सकता उसके लिए इस देशमें जगह नहीं मिलेगी। उसके लिए किसी भी देशमें जगह नहीं मिलनी चाहिए।

यद्यपि मोतीलालजी तत्कालीन मुख्य मान्यक नामी वकीलोंमें थे किन्तु उनकी आँखोंके सामने सदैव अपने देशका मानचित्र रहता था और अपने व्यक्तित्वको देशकी सभामें खपा देनेकी उनकी अटूट लगन किसीसे मात खानेको तैयार न थी। चौड़ा ललाट ऊपरको चढ़ी हुई मूँछें पढ़ते समय आँखोंपर चश्मा अध्ययनमें लीन हो रहनेवाला स्वभाव और अपने महल-जैसे भवनको छोड़कर गान्धीजीकी साबरमतीवाली कुटियाकी तरफ दौड़ पड़ना समयकी सामर्थ्य तथा अपनी सुविधाको खतरेमें डालकर सदैव अपनी सभाकी लगन और उसके स्वरूपको बढ़ाते जाना—ये सब पण्डित मोतीलाल नेहरूकी ऐसी विशेषताएँ थीं जो उनकी-सी ऊँचाईके बैजोड़ महापुरुष में ही प्राप्त हो सकती है।

श्रद्धेय टण्डनजीके जीवनके व्यवहारके महत्तम आदर्शोंकी यह झिल्ली है जिसमेंसे हम युगों-युगोंके सन्तोंके आचरणको झाँककर देख सकते हैं। साथ ही मैं देखता यह सत्य है जो उनका जीवन भी है और उनके जीवन का तत्त्व-चिन्तन भी। जो अन्तःकरणकी महान् विजय भी है मानव चरित्रका उच्चतर कानून भी और रीति-नीतिकी ईमानदारी भी।

लगभग पैंतीस वर्ष पहलेकी बात है एक बार मैं लाहौरके आत्माराम-भवनमें श्रद्धेय लाला लाजपतरायजीसे बातें कर रहा था। उन दिनों टण्डनजी लालाजी-द्वारा संस्थापित राजनीतिक शिक्षक विद्यालय (तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स) के या तो अध्यक्ष चुन गये थे या चुने जानेवाले हो थे। लालाजीका कथन था कि टण्डनजी बहुत जिद्दी हैं और न राजनीतिक शिक्षक विद्यालयके अध्यक्षके रूपमें अपनी भी आजन्मकी सेवाओंके लिए विशेष कुछ न लेकर वही वेतन लेना चाहते हैं जो अन्य सामान्य सदस्योंको मिलता है। उन दिनों तो इस विषयपर श्रद्धेय टण्डनजीसे कुछ पूछनेकी हिम्मत नहीं हुई किन्तु सन् १९४१ में जब मैं अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अध्यक्ष हुआ और वे गोरखपुर जेलसे छूटकर आये तब मैंने उनसे लालाजीकी यह वर्षों पुरानी शिकायत दोहरायी। टण्डनजी गम्भीर हो उठे। बोले — लालाजीसे यह कैसे सम्भव था कि राजनीतिक शिक्षक विद्यालयकी सम्पत्ति अन्यथा करते। लालाजी महान् थे। उनके त्याग और बलिदानोंसे बढ़ाये गये भारतीय स्वतन्त्रताके कदमोंके लिए मेरा सिर झुक जाता है। कहाँ मैं और कहाँ वे। किन्तु उन्होंने मुझे राजनीतिक शिक्षक विद्यालयका अध्यक्ष बनाया और यह कैसे सम्भव हो

समझता था कि मैं अपने-जैसेको महत्त्व दूँ।

एक बार नाभा-नरेश अपने प्रभु अंग्रेजोंसे असन्तुष्ट हुए और उन्होंने श्रीयुत् पुरुषोत्तमदासजी टण्डनको अपने यहाँका दीवान बनाया। कहते हैं एक बार टण्डनजीने प्रयाग जानेके लिए उनसे छुट्टी माँगी जिसे गंगा तट और प्रयागकी भूमि उन्हें बहुत प्रिय है। स्वर्गीय नाभा-नरेशने इनकार तो नहीं किया किन्तु टण्डनजीकी छुट्टीकी माँगपर वे बोले कुछ नहीं। टण्डनजीने तत्काल प्रयाग पहुँचकर अपना त्यागपत्र नाभा-नरेशको भिजवा दिया। इस प्रसंगको पं० बनारसीदासजीको चतुर्वेदीसे प्राप्त संस्मरणके उदाहरण-द्वारा समझा जा सकता है। कहते हैं देशके किसी महामान्य धनिक सज्जनने हिन्दी-जगत्के एक व्यक्तिको अपने एक सुप्रसिद्ध दैनिकमें नियुक्त करनेकी बात कही। उन्होंने अपनी सब सुख-सुविधाएँ भी लिख दीं जो वे उन्हें देना उचित समझते थे। पण्डित बनारसीदासजीने उक्त धनिक सज्जनको लिख दिया कि मछली पकड़ोगे तो खूब खाओगे और मगर पकड़नेकी कोशिश कीजिएगा तो वह आपको खा जायेगा।

टण्डनजी अत्यन्त नम्र हैं किन्तु राष्ट्रीय तथा भारतीय भाषाओंके गौरवकी रक्षा करनेमें वे कभी न झुकनेवाले व्यक्तियोंमें-से हैं। जब वे भाषण देने खड़े होते हैं तो अपने छोटे-छोटे उदाहरणोंसे विषयको इस तरह पुष्ट कर देते हैं कि लोकजीवन उनका अनुगमन किये बिना नहीं रह सकता। अपने सिद्धान्तोंके वे इतने पक्के हैं कि स्वराज्य मिलनेके पश्चात् एक बार हिन्दीसम्बन्धी प्रस्तावपर मत देना पड़ा तो उन्होंने कांग्रेसी नीतिके प्रतिकूल (प्रस्तावको हिन्दीके हितमें न माननेके कारण) उसके विरोधमें संकोचमुक्त अपना मत दिया और साथ ही कांग्रेससे त्यागपत्र भी दे दिया।

मैंने तो सदा यह माना है कि टण्डनजीके हाथ जो कुछ होकर आता वह इस देशकी राष्ट्रीयताका उज्ज्वलतर चरित्र था। इसीलिए महात्मा गाँधीजीने एक बार नवजीवनमें (जब मैं लखनऊके एक विद्यार्थीको

हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रवेश करानेके लिए गया था) प्रसंगवश कहा था कि पुरुषोत्तम वही बोलता है जो उसका अन्तःकरण उसे आज्ञा देता है। भारतकी जातीयता बहुत बलवान् है कि उसके पास पुरुषोत्तमदास टण्डन-जैसा व्यक्ति मौजूद है। आज जब भारत पतने लगता है और सन्तोष जब शिथिल होने लगता है, तब टण्डनजीकी तरफ देखकर बल मिलता है।

लोग अक्सर यह कहते सुने जाते हैं कि राजर्षि टण्डनजी केवल हिन्दीके बहुत बड़े भक्त हैं। किन्तु टण्डनजीने एक बार मुझसे कहा था और इस आशयके उन्होंने जहाँ-तहाँ भाषण भी दिये थे कि यदि हिन्दी भारतीय स्वतन्त्रताके मार्गमें आयेगी तो मैं स्वयं उसका गला घोंट दूँगा। वे हिन्दीको देशकी आजादीके पहले आजादीके प्राप्त करनेका साधन मानते रहे हैं और मिलनेके बाद आजादीको बचाये रखनेका। बम्बईमें भाई कन्हैयालालजी माणिकलालजी मुन्शीके यहाँ टण्डनजी और मैं एक ही कमरेमें ठहरे हुए थे। जब मैं मराठी गुजराती और हिन्दीका गुणगान कर रहा था और तीनोंके साम्यकी बात कह रहा था तब टण्डनजीने कहा था 'मैंने सुना है कि तमिल तेलुगु और मलयालममें बहुत अच्छा साहित्य है। तमिल तो भारतवर्षको आप ही के देशमें नहीं बोली जाती लंकामें एक बहुत बड़ा भाग तमिल बोलता है और सिंगापुर और मलयाका एक बहुत बड़ा भाग तमिल बोलता है। क्या बिना गुणोंके इतनी जगह भाषा बोली जा सकती है। उस समय मैं सोचता रहा कि इस व्यक्तिको समस्त भारतवर्षका कितना खयाल रहता है?

लोग यह सुनकर अचम्भा करेंगे कि महात्मा गान्धी मतभेदके समय भी टण्डनको बहुत मानते थे। उन्होंने एक बार कहा भी था कि हिन्दी यदि इस देशकी कीर्ति है तो इसीलिए कि पुरुषोत्तमदास-जैसे महान् व्यक्ति उसके संचालक हैं।

राजर्षि टण्डनजी उर्दू-फ़ारसीके बड़े हिमायती हैं। वे स्वयं उर्दू शेर बड़े चावसे पढ़ते हैं और जब वे उत्तर प्रदेश विधान-सभाके माननीय अ

थे तब उन्होंने अपनी नीति स्पष्ट करते हुए मुसलमान मित्रोंको अपना भाई बतलाया था। इसीलिए उनकी हिन्दीकी रीति-नीति मुसलमान भाइयोंको समझमें तो आ सकती थी किन्तु अँगरेजोंकी समझमें आना कठिन था। यों हिन्दी बोलनेवालोंपर यह उत्तरदायित्व है कि वे सारे जगत्का स्वागत करें। इस विषयमें रूससे सबक सीखना चाहिए। पिछले महायुद्धमें रूस समस्त संसारके कम्युनिस्टों और कम्युनिस्ट देशोंका समर्थन करता रहा किन्तु उसने रूसकी स्वतन्त्रता, दृढ़ता और आर्थिक व्यवस्थाको खतरेमें नहीं पड़ने दिया। इसीलिए उसके यहाँके आविष्कार विश्वमें चमत्कार दिखा रहे हैं। और उसके यहाँके धनसे कितने ही लोगोंको सहायता मिल रही है।

हिन्दीके प्रचारके क्षेत्रमें प्रयाग पिछले चालीस-पचास वर्षोंसे ही आगे आया। उसके पहले काशी, आगरा, बाँकीपुर यही स्थान हिन्दीके गढ़ थे। टण्डनजी और अनेक मित्रोंने अपने त्याग और तपस्यासे प्रयागको हिन्दीका गढ़ बनाया। यदि हम सचमुच तुलसीदासकी तरह हिन्दीका विस्तार चाहें तो हमें समझकर विनोबा-जैसे सन्त लोगोंकी कदर करनी चाहिए जो हिन्दीमें सोच रहे हैं और अपना चिन्तन इसी भाषामें विश्वको प्रदान कर रहे हैं। इसी तरह हमें टण्डनजीके व्यक्तित्व और प्रयत्नको समझना चाहिए। हिन्दी-वादी कहकर जिन लोगोंमें टण्डनजीका मजाक उड़ाया जाता है वह चीज कहीं अस्तित्वमें ही नहीं है। केवल भाषणकर्ताओंको अपनी तालियाँ लेनेके लिए सुगम सीढ़ियाँ चाहिए इसीलिए हिन्दी गढ़का निर्माण किया गया है।

एक बार टण्डनजीने मुजफ्फरनगर कहा था कि अब तो हिन्दीको सारे राष्ट्रकी भाषा बनकर रहना पड़ेगा। उसको विकसित प्रान्तोंमें ही नहीं रहना और सर्वनामोंके रूपोंमें परिवर्तन करना पड़ेगा। क्या आप उसके लिए प्रस्तुत हैं? एक बार यह भी कहा था कि यदि हिन्दीका नाम भारती रहे तो कैसा रहेगा? यह सन् ४८ की बात है—सम्मेलनके बम्बई अधिवेशनकी।

मुझे यह सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ और हिन्दी-जगत्‌को यह सुनकर गर्व हुए बिना न रहेगा कि इस देशके एक प्रान्तकी गवर्नरी टण्डनजीके सामने रखी गयी तब उन्होंने अपनी साधु-सुलभ नम्रताके साथ इनकार कर दिया। इस विषयमें उनका कथन बहुत आदरणीय था। उनके मतसे यही काम छोटा नहीं है कि हमारे प्रदेशोंमें जहाँ-जहाँ गवर्नरियाँ कायम हुई हैं हम वहाँके जनजीवन और गवर्नरोंकी सहायता करें। सन् १९२४ में स्व. गणेशशंकरजीके कानपुरमें चलनेवाले राजद्रोहके मुकदमेमें गणेशजीका वक्तव्य लिखवानेके लिए जब मैं टण्डनजीके पास कानपुरसे प्रयाग गया तब वे प्रयागमें रहकर वकालत करते थे और उन दिनों साधुवर श्री वियोगी हरि हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्यालयमें टण्डनजीके साथ थे। उस समय टण्डनजीने जो मैंने उनसे वक्तव्य लिखवाया था और जिसे गणेशजीने कुछ सामान्य परिवर्तनोंके साथ कानपुरकी अदालतमें पेश किया था, मैंने देखा कि उस वक्तव्यको लिखवाते समय कानूनकी या नीति-नियमकी कोई भी शिकन टण्डनजीके चेहरेपर नहीं थी। मैं यह भी निवेदन कर दूँ कि कानपुरका 'प्रताप' उन दिनों इस देशके स्वाधीनचेता प्रवृत्तियोंका पोषक और नायक था तथा श्रद्धेय पुरुषोत्तमदासजी टण्डन उस पत्रके ट्रस्टियोंमें-से एक थे।

हिन्दी कविता और हिन्दी गद्यके प्रति ही टण्डनजीका आकर्षण नहीं है, जब वे हिन्दी साहित्य सम्मेलनोंमें जाते हैं तब हिन्दी पुस्तकोंके प्रकाशकोंकी दुकानोंपर जाकर कुछ-न-कुछ पुस्तकें अवश्य खरीदते हैं। जिन दिनों वे लाहौरके पंजाब नेशनल बैंकके मैनेजर थे उन दिनों वे अपने वेतनका भाग उस प्रदेशमें चलनेवाली हिन्दी पाठशालाओंके लिए खर्च कर देते थे। यह बात मुझसे सन् १९४० में स्व. गोस्वामी गणेशदत्तजीने कही थी।

१९२ में पटना हिन्दी साहित्य सम्मेलनके समय तथा १९२४ में भी टण्डनजी कदाचित् खादी नहीं पहने हुए थे। वे सफेद रंगका फेटा बाँधते

बीच ही में विषयको त्याग दें तो उसका उत्तरदायित्व टण्डनजीपर नहीं हो सकता। भी वे इस बातको भरपूर सावधानी रखते हैं कि उनकी बातों-से आगन्तुकका मन न दुखे। मैंने अपराधकी उस प्रवृत्तिमें उन्हें कभी रस लेते नहीं देखा जिसे गपशपपूर्वक बात कहते हैं। वे मानते हैं कि अपराधका पक्ष लेना मस्तिष्क रखनेवालेके लिए स्वयं बड़ा अपराध है। यदि किसी समूहमें आप टण्डनजीको देखें तो टण्डनजीके स्वभाव, शील और सौजन्यके प्रति आप प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। आश्चर्यकी बात यह है कि कोई भी चर्चा उनकी आदत नहीं हो गयी है। संसारके समस्त गम्भीर प्रश्नोंपर वे उत्सुकतापूर्ण बालकोंकी तरह विचार करते हैं। उस समय लगता है कि उनको वर्णित विवेकोंकी धाराकी तरह निर्मलतापूर्वक बिना रुके बहती रहती है। यह बहुत बड़ी बात है कि कच्चे और मिलाये हुए अनाजकी धानीकी विलग भावक बाली हो यह विचारोंकी और उनकी दाय करनेवाली शक्तिकी नापक मात्रामें बराबर बना रह सके जब कि एक आदतन दूसरी आदत रखकर ही और उनकी सीढ़ियोंपर अपने स्वभावके पैर जमा-जमाकर ही मनुष्य आगे बढ़ता रहता है। लगता है उन्होंने अपनी सम्पूर्ण बहिर्मुखी आदतोंको ऊर्ध्वमुखी स्वभाव बना लिया है। उन्होंने अपने जीवनमें जितना सहा है उतना कभी कहा नहीं। मानो सारे भारत की पीढ़ियोंकी परम्परा बता देना चाहते हैं। उनकी धनिकता हो या सम्पत्ति की धनिकता अथवा धनिकता हो या ज्ञानकी धनिकता वे किसीको अपने पतित देवताओंपर सवार होते नहीं देख सकते। कदाचित् इसीलिए जब मैं उनके पास ठहरा मैंने यहाँ छन्दोंका साहित्य ही बड़ा पाया।

इतनी कम आवश्यकताओंपर उन्हें जीवनकी लगन लग गयी है मानो उनका अन्तर्बाह्य सम्पूर्ण ठोक-ठोक रहता है। उनकी सोच मानो उनके अस्तित्वका वह अधिकार है, जो अपने मूल देशकी स्वतन्त्रता जिसके आदर्श साथ और हिन्दीके उत्थानका काम बराबर किये जायेगी। उनका जीवन डाकखानेकी मुहरकी तरह नहीं पड़ता है अपनी मार्ग छोड़ता जाता है

और वस्तुतः संस्थाओं और व्यक्तियोंके रूपमें निर्माण कार्य किया करता है। रुपया यद्यपि उनके चरणोंपर ढेरों इकट्ठा हो सकता है, एक एडवोकेट के नाते उनके मस्तिष्कमें भी अनेक शक्तियाँ हैं किन्तु रुपया और मस्तिष्क की शक्तियोंसे अधिक वे भारतीय संस्कृतिका मूल्य आंकते हैं और भारतीय चरित्रको इतना ऊँचा उठाना चाहते हैं कि जिसपर रुपया और मस्तिष्क की शक्ति चढ़ायी जा सके। क्योंकि वे मानते हैं कि मस्तिष्ककी शक्ति बड़ी भले हो वह किसी देश और किसी जातिके चरित्रसे ऊँची नहीं हो सकती इसीलिए काव्य चित्र कलाकृति नाटक और धर्मोपदेश इन सबसे परे पुरुषोत्तमदास टंडन मानो ऋषियोंके जीवनमें युग-भिन्न धारा जानते हैं। यद्यपि मैं जानता हूँ वे मानते हैं कि जीवनकी उच्चता उसका नाम है जिसके लिए कैफियतें नहीं देनी पड़ती है। यही कारण है कि टंडन जी बापूजी द्वारा इतने सम्मानित किये गये कि यदि कभी महात्मा गान्धीके साथ मतभेद भी हो जाता तो महात्माजी टंडनजीको श्रेष्ठताके कारण लगातार मतभेदके विषयोंपर भी उनसे सलाह लेते रहते थे।

यदि एक हाथमें कोई सौभाग्य और दूसरेमें कलेवा लेकर आये तो जहाँतक मैं जानता हूँ टंडनजी दूसरेको संतोष लगा लेंगे और पहलेको ठुकरा देंगे। लगता है जिनके यथार्थ विश्वास और संस्कृतिमें वे कोई भेद नहीं मानते। जो बात उन्हें कहनी है, वह कहते रहे हैं और कहते रहेंगे। वचनोंसे कभी नहीं हटेंगे वचनोंसे नहीं बदलेंगे युक्तसे नहीं झुकेंगे। वे भले ही ऊँचे वर्गों और व्यक्तियोंके अवतरण अपने भाषणोंमें रखें किन्तु हिन्दी संसार तो केवल उनकी तरफ देखकर उनके समर्पण स्वभावकी तरफ देखकर ही जीवित रहा है और जीवित रहेगा। यदि मैं हिन्दी-जगत्के हृदयका आकलन यह करूँ तो हिन्दी-हितके लिए उन्हें किसी अन्य परिचय और आदराचारकी आवश्यकता नहीं है। उन्हें पुरुषोत्तमदास टंडनकी आवश्यकता है।

वे मानते हैं कि बिना भारतीय संस्कृतिको महत्ता पुस्तकोंमें जाकर

चरम भले ही ले शब्दोंकी नदीमें कोई डूबता नहीं है, और शब्दोंकी नावसे कोई पार नहीं उतरता । इसीलिए हमारे ग्रन्थोंने यह कहा 'रास्ता वह जो हमें ऊपरकी तरफ ले जाये धर्म हमारा वह जो हमें ऊँचा उठाय और हमारा व्यक्तित्व वह जो अपने चरित्रके हाथोंसे अपनी संस्कृतिमें रंग गूँथता रहे ।" इस व्यक्तिका बोलना भी बोलना है चुप रहना भी इस व्यक्तिका घूमना भी बोलना है, ठहर जाना भी इस व्यक्तिका आँखें खोलना भी बोलना है आँखें मूँद लेना भी । और तब इस जमानेका गरीबसे गरीब और बेपढ़ासे बेपढ़ा व्यक्ति पढ़ सकता है । ऐसा व्यक्ति परम अमन चैनसे रहते हुए भी मानो सूलीपर टँगा होता है । वह व्यक्ति नहीं रह जाता व्यक्तित्व बन जाता है ।

हिन्दी भाषा और भारतीय साहित्यके प्रति उनके विचार महात्मा गान्धीसे बहुत कम मिलते-जुलते हैं । वे अकसर यह कहते देखे गये हैं कि *महात्माजीसे झगड़ते समय मुझे अच्छा नहीं लगता ।* किन्तु साथ ही वे ही एक हैं जो उदारतापूर्वक महात्मा गान्धीसे लड़ सके और उसी वृत्तिसे अपने प्रतिकूल मतवालोंको भी समझ सके । जो लोग पदोंकी प्राप्तिसे अपनी आत्माको चौंधियाये रखते हैं वे भले ही उन्हें न समझ सकें किन्तु जो लोगोंमें पदोंकी प्राप्तिके समय पीछे रहनेका साहस पाते हैं वे टण्डनजीके सम्पादित ठीक जीवन और साहसको समझते रहे हैं और समझ सकेंगे । वे जानते हैं कि 'हाँ' कहनेमें जिस उत्तरदायित्वकी आवश्यकता होती है कभी-कभी 'ना' कहनेमें उससे बड़े उत्तरदायित्वकी आवश्यकता हो जाती है ।

हिन्दीका जानकार यह अनुभव करता है कि जो हिन्दी इस देशकी समस्त भाषाओंके हिल-मिल जाने और उन्हें ऊँचा उठानेका उद्योग नहीं करती, जो हिन्दी देशमें रहकर अलग रहना चाहती है, जो हिन्दी अपने पैरोंके बड़े होनेका गर्व कर सकती है और हिमालयकी महान् सभ्यता नहीं बन सकती तथा जो हिन्दी इस देशके प्रत्येक भाषा-भाषी और निवासीके

गौरव और ठक नहीं बन सकती वह वरिष्ठ हिन्दी पुरुषोत्तमदास टण्डनकी हिन्दी नहीं है। पुरुषोत्तमदास टण्डनकी हिन्दीके सिरपर हिमालय-सा मुकुट शोभित है। सिन्धु और ब्रह्मपुत्र उसकी भुजाएँ हैं, गंगा और यमुना उसके कण्ठहार हैं नर्मदा और ताप्ती उसकी किंकिणी बनकर शोभित हैं उसकी साड़ीकी किनारमें कृष्णा कावेरी और महानदी लहर मार रही हैं और समुद्रकी तरह पुरुषोत्तमदास टण्डन केवल उसी हिन्दीके चरणोंमें पखारे जा रहा है और पखारते जाता रहेगा। यह कैसे सम्भव है कि बंगाल और तमिल जिसे स्वीकार न करे महाराष्ट्र गुजरात आसाम और पंजाब जिसे स्वीकार न करे, वह पुरुषोत्तमदास टण्डनकी हिन्दी हो। वे हिन्दीके उसी सर्वमान्य महान् रूपके उपासक हैं जिसके विषयमें सच्चर विनोबा कहते हैं कि वाणी जब तो वही राष्ट्रकी होती है जो मरने लगता है।

राजर्षि टण्डनजीका इस बातसे कुछ लेना-देना नहीं है कि हम उनका सम्मान करते हैं या नहीं करते। सम्मानके सामान सजाते कभी देखे नहीं जा सकते।

लोग न जाने क्यों राजर्षिपक्षपातियोंको दोष देते हैं। जो हिन्दी ग्रामीण हिन्दी न बनना सके और केवल अपने अधिकारोंको सुरक्षित रखनेके लिए हिन्दीका विरोध करते हैं, उन्हें भी राजर्षिजीको दोष देनेका अधिकार किस तरह है मैं नहीं समझ पाता। दीन प्रदीप विस्तार और पटलकी दिशामें इस देशकी भाषाओंको अन्य देशोंकी भाषाओंसे अभी बहुत सीखना है। वह दिन धन्य होगा कि हिमालयकी तरह हम अपने कर्मों-कथा और कार्योंमें पुरुषोत्तमदास टण्डनको याद कर सकें।

अनेक बार टण्डनजी जबलपुर पधारे हैं। जब वे अखिल भारतवर्षीय गौवंशके अध्यक्षके नाते जबलपुर पधारे तब स्थानीय श्रीकृष्णशंकर महा-विद्यालयमें उनका भाषण हुआ था और उनके सम्मानमें भोज दिया गया था। किन्तु एक दिन जाड़की ठिठुरती सुबहमें जाते वे राजभक्त प्रकाशनके श्री ओमप्रकाशजी तथा भारती-भण्डारके श्री वाचस्पति

पाठकके साथ अथवा पधारे थे। उन दिनों वे स्वयं रुग्ण थे किन्तु उनकी साँस-साँस मानो औरोंकी प्रेरणा और आशीर्वाद बनकर बँट रही थी। उनकी रुचिपर बोलनेवाला ही नहीं उनसे प्रत्येक क्षण समझनेवाला व्यक्ति भी यह जानता है कि जो सबसे उत्तम है वह जिसको दुर्लभ वस्तुओंमें-स एक है। वह टण्डनजीके साथ है टण्डनजीके साथ रहेगी और उनकी अपनी वस्तु है।

महीय पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके सबल व्यक्तित्वको मेरे प्रणाम।*



*यह लेख राजर्षि टण्डनजीके निधनसे लगभग छः वर्ष पूर्व लिखा गया था।